अध्याय - प्रथम

अब्दुल बिस्मिल्लाह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व: एक अध्ययन

आधुनिक विज्ञान द्वारा अभिकथित कार्य-कारण संबंधी सिद्धांत के अनुसार भौतिक और अभौतिक जगत में परिचालित होने वाले प्रत्येक क्रिया-कलाप का एक निर्धारित कारण अवश्य होता है। लोक हो या परलोक, उसमें होने वाले प्रत्येक तरह के निर्माण या विध्वंस, परिवर्तन तथा प्रतिवर्तन आदि का एक ऐसा कारण अवश्य होता है जिसके आधार पर पर्यावरणीय अथवा पारिस्थितकीय भौतिक या मानव निर्मित और सचर या अचर की रचना अथवा इनका विध्वंस होता है। इस कारण की वर्तमानता के अभाव में सांसारिक या असांसारिक जगत में किसी भी तरह के क्रिया-कलाप घटना-व्यापार एवं निर्माण-विखण्डन की प्रक्रियागत संपन्नता संभव ही नहीं हो सकती है। जिस तरह से प्राकृतिक परिवेश में निर्जीवों की रचना तथा विनाश घटनाओं तथा परिवर्तनों की संपन्नता, प्राणियों के उद्भव व विकास और उनकी निरंतर गतिशीलता का एक निर्धारित कारण निश्चयात्मक कारण अवश्य होता है ठीक उसी तरह से मनुष्य के मानसिक पर्यावरण में परिचालित प्रत्येक क्रिया-कलाप का भी एक निर्धारित कारण अपरिहार्य रूप से विद्यमान होता है अर्थात् भौतिक-अभौतिक परिवेश में परिचालित प्रत्येक क्रिया-कलाप विषयक विज्ञान का कार्य-कारण संबंधी आधारिक सिद्धांत ही मानवीय मनोवृत्तियों के निर्माण में भी बुनियादी भूमिका का निर्वहन करता है। इसे यदि सरल शब्दों मे कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य वैचारिक-मानसिक अंर्तवृत्तियों के निर्माण में भी कुछ आधारभूत घटक वर्तमान होकर इनकी क्रियाशीलता के लिए संरचनात्मक कारण उपस्थित करते हैं जिसके आधार पर ही मनुष्य का मानसिक, वैचारिक, चारित्रिक और व्यावहारिक विकास संभव होता है। दरअसल मनुष्य का हृदय अनेक भावात्मक प्रकृति का होता है जो संख्यातीत कारणों या परिस्थितियों की प्रभावोत्पादकता से भिन्नार्थक भाव और विचार के प्रादुर्भाव द्वारा उसकी अंतवृत्ति को

उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट किस्म का बना देता है। यही कारण है कि किसी व्यक्ति विशेष की मनोवृत्तियों तथा उसकी आभ्यांतरिक अनुभूतियों के निर्माणक इन कारणों की समुचित बोधगम्यता के अभाव में उस व्यक्ति के मानसिक एवं वैचारिक धरातल पर प्रकीर्णित असंख्य प्रवृत्तियों का समग्र व तटस्थ ज्ञान प्राप्त करना कल्पनातीत हो जाता है।

हिंदी साहित्य के सुविख्यात समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- "मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है। उसका अपनी सत्ता का ज्ञान तक लोकबद्ध है। 1951ई° इसी लोक-सम्बद्धता के कारण ही मुनष्य की बौद्धिक या वैचारिक प्रवृत्तियों के निर्माण में उसकी नैसर्गिक अंतवृत्तियों से उसकी बाह्य अर्थात् पर्यावरणीय पतिरीस्थितियों के सम्मिलन की महती भूमिका होती है।" दरअसल मनुष्य में उसके जन्म से ही विद्यमान आंतरिक प्रवृत्तियों का भौतिक पर्यावरण से सम्मिलन और प्रतिक्रिया स्वरूप निर्मित मनोवृत्ति ही उसके व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला होती है। जिन नैसर्गिक घटको के माध्यम से मनुष्य के अंतःकरण में संवेदनशीलता मार्मिकता और नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का प्रकीर्णन होता है उन्ही घटकों को मनुष्य के व्यक्तित्वरूपी विशाल प्रासाद का आधारिक निर्माता कहा जाता है। इस समग्र-अनुक्रिया-प्रक्रिया मे कार्य-कारण संबंधी वैज्ञानिक सिद्धांत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो कि व्यक्ति की चिंतनशीलता भावान्विति और दयार्द्रता जैसे व्यक्तियों के उत्कर्ष में उसकी पर्यावरणीय पृष्ठभूमि की उपादेयता को विशिष्ट बना देती है। इसमें स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य की जन्मजात आंतरिक प्रवृत्तियाँ चाहे जैसी हो उनकी उत्पत्ति से लेकर उत्कर्ष तक की यात्रा में संबंधित मनुष्य का युगीन परिवेश विशेष महत्त्व रखता है अर्थात उसका वातावरण ही इस समय वैचारिक-मानसिक यात्रा का आधारभूत कारण होता है।

साहित्यकार, समाज-सुधारक और विचारक जैसे अभिव्यापक लोक-कल्याण का कार्य करने वाले विशेष प्रज्ञाशील मनुष्यों तथा समाज के साधारण मनुष्यों के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में जन्मजात अर्थात् कारयित्री प्रतिभा के साथ-साथ अध्ययन और अनुभव से

उपार्जित अर्थात् भावयित्री प्रतिभा की उपस्थिति का ही आधारिक विभेद होता है। समाज के दैनंदिन मनुष्यों में किसी एक प्रकार की प्रतिभा की समयस्थिति ही संभव हो पाती है जबकि साहित्य सर्जको की लोक कल्याणकारी रचनाधर्मिता के विकास में दोनों किस्म की प्रतिभाओ का अंतर्वेशन अपरिहार्य होता है। रचनाकार में कारयित्री प्रतिभा ही नैसर्गिक रूप से जन्मना वर्तमान होती है। अपनी इस उर्ध्व अंतरावृत्ति में भावयित्री प्रतिभा के रूप में वह अपने देशकाल और वातावरण का सांसारिक ज्ञान शिक्षा की प्रकृति में प्राप्त करता है। यदि वह स्वयं को भावयित्री प्रतिभा से संपन्न नहीं बनाएगा तो उसका युग सत्य चाहे जो भी रहे, उसकी रचनाधर्मिता और मनोवृत्ति दोनों अविकसित रह जाएगी। इसका परिणाम यह होगा कि उसकी मनोवृत्ति अपने देश काल की घटनाओं एवं परिवर्तन से अप्रभावित रहते हुए संकीर्णता के साथ दुष्प्रवृत्तियों की ओर अनुभमन करने लगेगी। अभिकथन का सामान्य सा अभिप्राय यह है कि मनुष्य को बौद्धिक तया वैचारिक विकास में उसके देशकाल संबंधी परिस्थितियों, प्रवृत्तियों और परिवर्तनों आदि की प्रभावोत्पादकता तभी द्दष्टिगोचर होगी जब वह अपनी कारयित्री प्रतिभा में सांसारिक ज्ञान का समायोजित करने का सद्प्रयत्न करेगा। यह प्रयत्न लोकमंगल जैसा व्यापक उद्देश्य रखने वाले साहित्य-सर्जक ही करते है क्योंकि ये लोकरक्षक, जन्म से ही विलक्षण किस्म की प्रतिभाओ के संयोजक होने के कारण उत्कृष्ट मनोवृत्ति वाले होते है। इनमें प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा के साथ-साथ अध्ययन-अनुशीलन से अर्जित प्रतिभा भी अंतनिर्विष्ट रहती है जिसके कारण साधारण मनुष्यों की समतुल्यता में इनकी युगीन बोधगम्यता उत्कृष्ट एवं शीघ्रगामी होती है। ये स्वदेश और परदेश संबंधी इतिहास और वर्तमान के विभिन्न विषय का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान रखते है तथा यही ज्ञान इन मनीषियो के व्यक्तित्व को लोकमंगलकारी द्दष्टिकोण से युक्त बनाता है। इसी ज्ञान के आधार पर साहित्य-सर्जको और समाज के साधारण मनुष्यों का बौद्धिक तथा व्यक्तित्व संबंधी आपसी विभेद भी सिद्ध हो जाता है जिसके आधार पर रचनाकार कालजयी और सामान्य मनुष्य, मनुष्य मात्र रह जाते हैं।

सर्वज्ञात है कि साहित्य अपने देशकाल और वातावरण की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है। इन चित्तवृत्तियों के निर्माण में संबंधित समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। दरअसल इन्ही परिस्थितियों के सम्मिलन से साहित्य का देश काल तथा परिवेश निर्मित होता है जिसकी अभिव्यक्ति को साहित्य अपने उद्देश्य के केन्द्र में रखता है। जनता की चित्तवृत्तियाँ जहाँ साहित्य की निर्माता होती है वहीं देशकाल एवं वातावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास में आधार की भूमिका का निर्वहन करने के साथ-साथ साहित्य-सृजन हेतु यथोचित विषयवस्तु प्रदान करता है। इसलिए साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं उसके साहित्य में अंतर्भुक्त प्रवृत्तियों के सम्यक अध्ययन-अनुशीलन के लिए उसके देशकाल और वातावरण की सघनतम जाँच-पड़ताल अपरिहार्य हो जाती है। कारण यह है कि रचनाकार की रचनाओं की व्याख्या-विवेचना उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं की बोधगम्यता के उपरांत ही संभव हो सकती है। साहित्य-सर्जक अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही सृजन हेतु विषयों का चयन और विचारो का ताना-बाना बुनता है। उसका यह व्यक्तित्व उसके देशकाल तथा वातावरण की ही उपज होता है। अत: यह कह सकते है कि किसी साहित्यकार की सर्जनाओं का अध्ययन-अनुशीलन या मूल्यांकन करने के लिए जिस तरह से उसके व्यक्तित्व के सम्यक विवेचन-विश्लेषण के लिए उसके देशकाल एवं वातावरण की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, परिवर्तनों और घटनाओं आदि का उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। इस संदर्भ में साहित्यकार का व्यक्तित्व, उसका परिवेश और उसके द्वारा सृजित साहित्य परस्पर घनिष्ठता के साथ अंतर्संबंधित होते हैं। इस तरह से किसी रचनाकार की रचनाओं में वस्तुत: उसका व्यक्तित्व उसकी अंतवृत्तियाँ और परिवेशगत परिस्थितियाँ-प्रवृत्तियाँ व्यापक जन-समुदाय की सम्मिलित चित्तवृत्तियाॅं हो तथा उसकी स्वानुभूतियाँ व अनुभव आदि ही शब्दों के द्वारा प्रतिबिम्बात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। अतःकिसी साहित्यकार की सर्जनाओं की तटस्थ मीमांसा करने के लिए उसकी अंतर्वृत्तियों की निर्मात्री उसके व्यक्तित्व तथा उसके

व्यक्तित्व की निर्माणक देशकाल व परिवेश संबंधी युगीन परिस्थितियों सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन-अनुशीलन करना अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी-साहित्य-संसार के नक्षत्राकाश में भोर के तारे की भाँति अपनी प्रभा का प्रकीर्णन करने वाले तथा कालजयी ख्यातिलब्धता के संरक्षक अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने बहुआयामी व्यक्तित्व और उत्कृष्ट सृजनशीलता के माध्यम से साहित्य रूपी उपवन को विभिन्न विधाओं रूपी पुष्पों, लताओं आदि से संबंधित कर रखा है। ये व्यापक लोकमंगल के आराधक ऐसे रचनाकार है जिनके व्यक्तित्व निर्माण में अंतर्वृत्तियों एवं बाह्य परिस्थितियों का सर्वोत्कृष्ट सम्मिलन रहा है। ज्ञान, विज्ञान एवं मनोविज्ञान के बीच यथेष्ट सामंजस्य स्थापित रखते हुए बौद्धिक और रचनात्मक व्यापारों के मध्य कार्य-कारण संबंधों को इतने अधिक यथार्थता के साथ विवेचित करने वाले ऐसे प्रत्युत्पन्नमतित्व प्रज्ञा वाले रचनाकार संसार में गिने-चुने ही हुए हैं। इनके इस तरह के व्यक्तित्व निर्माण में इनकी कारयित्री प्रतिभा के साथ-साथ युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक परिस्थितियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि अब्दुल बिस्मिल्लाह की साहित्यिक यात्रा के उत्कर्ष तक पहुँचने से पूर्व ही साहित्य की आत्मकथा विधा के लेखन की व्यवस्थित शरुआत हो गयी थी जिसके माध्यम से रचनाकार अपने जीवन की संगतियों-विसंगतियों को यथार्थता के साथ अभिव्यक्त करके अंतर्मन का बोझ हल्का करते रहे हैं। लेकिन समकालीन परिवेश मे इस साहित्यिक विधा ने अपनी यथार्थता और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के उद्देश्य को खो दिया है तथा आत्म-प्रचार का साधन मात्र ही बनकर रह गई है।

आज के आत्मकथाकार अपनी आत्मकथाओं में अपने जीवनगत वृत्तांतों का अतिरंजनपूर्ण वर्णन करके सहृदयों की सहानभूति प्राप्त करने तथा उनके सम्मुख स्वयं को देवतुल्य सिद्ध करने की आकांक्षा में अपने को कर्मवीर, धर्मवीर, सेवक, शोषित, उत्पीड़ित आदि उपमेयो से विभूषित करने लगे हैं। लेकिन ध्यातव्य है कि जो रचनाकार आत्ममुग्ध या

उन्मादी प्रवृत्ति के नहीं होते हैं अपनी आत्मा कर्म एवं प्रतिभा से महान होते हैं उन्हें अपने-अपने बारे मे अधिक चीख-पुकार करने या कालजयी होने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए आत्मवृत्त लेखन की आवश्यकता न पहले कभी थी न आज है और न कभी भविष्य में होगी। महाकवि कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, निराला, प्रसाद और कविवर सुमित्रानंदन पंत ने आत्मकथा लेखन के बगैर जो साहित्यिक अमरत्व प्राप्त किया है, वह अपना जीवन वृत्व लिखने वाले साहित्यकारों के लिए सदैव दुर्लभ रहा है।

समकालीन कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी अभी तक अपनी आत्मकथा की रचना नहीं की है। यद्यपि इनका विशिष्ट रचना-कर्म ही इनके अभ्यांतरिक व बाह्य अभिधान व प्रवृत्तियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है लेकिन आत्मकथा का यह अभाव उस समय अधिक खटकता है जब इनके जन्म, मृत्यु, शिक्षा, पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं साहित्य-कर्म संबंधी तथ्यों के यथेष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। ऐसे में इस आवश्यकता की पूर्ति अर्थात इनके व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी तथ्यों के वास्तविक ज्ञान के लिए विभिन्न व्यक्तियो द्वारा लिये गये इनके साक्षात्कार, इनके द्वारा लिखित संस्मरणात्मक एवं जीवन-वृत्त संबंधी स्वतंत्र लेखो सगे-संबंधियो की बातें, समसामयिकों के कथनों तथा कुछेक जीवनियों आदि पर ही आश्रित रहना पड़ता है। दरअसल बिस्मिल्लाह जी ने अपने जीवन वृत्त संबंधी कुछेक स्वतंत्र लेखों के अतिरिक्त किसी तरह के आत्मकथ्य या आत्मकथांश की रचना अभी तक नहीं की है जिसके आधार पर उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का कालक्रमिक व्यवस्थित एवं सारगर्भित अध्ययन-अनुशीलन किया जा सके। लेकिन फिर भी विभिन्न समयावधियों में उन्होंने आत्मपरिचय के उद्देश्य से पत्र-पत्रिकाओं में जो लेख प्रकाशित करवाये या फिर भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि से अंतर्संबंधित व्यक्तियों ने उनका जो साक्षात्कार लिया, उसके आधार पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर बहुत हद तक यथेष्ट प्रकाश पड़ जाता है। एतद्विषयक अवशेष आधार पर बिस्मिल्लाह जी पर हुए अगणित शोध-कार्य दूर कर देते हैं। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व के अध्ययन-अनुशीलन में हम इन प्रकार के स्रोतों पर आश्रित

रहेंगे। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक की समाप्ति से पूर्व हिन्दी साहित्येतिहास में अधिष्ठित छायावाद के चारों स्तम्भों (प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा) ने समेकित रूप से काव्य-विधा को जितनी अधिक समृद्धि प्रदान की थी, उससे कही अधिक उसी समायावधि के समानांतर साहसिक देशाटन करने वाले कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सिद्धांत के सहारे अकेले ही कथा-साहित्य को वैभवपूर्ण बनाया।

साहित्यिक परिक्षेत्र में प्रेमचंद जी के इसी आदर्श को प्रक्षिप्त रखते हुए निरा यथार्थवाद के आश्रय से उसमे अपने स्थानीय परिवेश के अनुरूप आँचलिकता का समावेश करते है प्रेमचंद जी की परम्परा को संशोधित परिवर्द्धित प्रकृति में आगे बढ़ाने का श्रेय हिंदी साहित्य-संसार के चितेरे अमर कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु को जाता है। प्रेमचंद जी ने अपने कथा-साहित्य में आदर्श के झरोखे से ग्रामीण अँचल के कुछ वास्तविक प्रतिबिम्ब दिखाने का प्रयत्न किया था लेकिन रेणु ने आदर्श के उस गवाक्ष को उखाड़ फेका और उसकी जगह आँचलिकता की खिड़की लगा दी जिससे सम्पूर्ण भारत के ग्रामीण जीवन का दृश्य बड़ी सहजता और स्वाभाविकता के साथ प्रत्यक्षित हो उठा। इसी आँचलिकता की प्रवृत्ति ने रेणु के साहित्यकार को आँचलिकता का विशेष अपना अभिधान प्रदान किया। यद्यपि कालक्रम की दृष्टि से देखें तो रेणु से कुछ ही वर्ष पूर्व यह कार्य बाबा वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' ने किया था। उन्होंने भी प्रेमचंद जी की आदर्शोन्मुखी पद्धति का परित्याग कर निरा यथार्थवादी शैली में ग्रामीण जीवन को कथानकीय आवरण पहनाने का प्रयास किया किया था लेकिन उन्हें रेणु जितनी सफलता इस संदर्भ में नहीं मिली थी। दरअसल इस कार्य और क्षेत्र में पहली बार कालजयी महारत प्रथमतः रेणु को ही हासिल हुई इसीलिए उन्हें हिन्दी साहित्येतिहास का पहला शुद्ध आँचलिक कथाकार होने का गौरव प्राप्त है। स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य मे वैसे तो असंख्य साहित्यकारों ने अपनी कालजयी सर्जनाओ के माध्यम से साहित्य की श्रीवृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसमें उन्होंने अपने देशकाल और वातावरण के सापेक्ष अपने समकालीन सामाजिक,

आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, चित्तवृत्तियों तथा घटनां व्यापारो आदि की कथानीय स्वरूप प्रदान करने का सफल प्रयत्न किया है।

ध्यातव्य है कि प्रेमचंद जी की औपन्यासिक प्रकृति वस्तुतःसामाजिक थी अर्थात् वे एक सामाजिक प्रकृति के उपन्यासकार थे और इसी सामाजिकता के अंतर्गत उन्होने अपने उपन्यासो में आँचलिकता की भी थोड़ी बहुत झलक दिखलाई थी। कालांतर में प्रेमचंद जी की यह परम्परा दो धाराओ में विभक्त होकर आगे बढ़ी। इसकी पहली धारा को नागार्जुन एवं फणीश्वरनाथ रेणु ने आगे बढ़ाया। नागार्जुन ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के स्थान पर केवल यथार्थवाद को स्वीकार किया लेकिन आँचलिकता की ओर अनवरत होने पर भी इन्होने प्रेमचंद जी की सामाजिकता की पूर्ण अवहेलना नहीं की। जबकि रेणु का यथार्थवाद प्रेमचंद जी की आदर्शवादिता तथा सामाजिकता दोनों को उपेक्षित करते हुए केवल आँचलिकता को ही लेकर आगे बढ़ा। इस संदर्भ में यहाँ यह स्पष्ट कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि सामाजिकता और आँचलिकता परस्पर समानार्थी या पर्याय नहीं होती है। सामाजिकता की आयामिक विस्तीर्णता आँचलिकता की समतुल्यता में बहुत अधिक होती है। इसे यो कह सकते हैं कि दोनों में अंगी और अंग का सम्बन्ध होता है। जिसमें आँचलिकता, सामाजिकता की एक अंग मात्र होती है। रेणु ने अपने कथा-साहित्य में आँचलिकता का ग्रहण करके सामाजिकता के एक अंग या पक्ष का ही चित्रण किया है जिससे उसके अन्य पक्ष या घटक उपेक्षित और गौण हो गए हैं।

प्रेमचंद जी की सैद्धांतिक-वैचारिक परम्परा को आगे बढ़ाने वाली दूसरी शाखा के प्रमुख कथाकार जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी आदि थे जो कि प्रेमचंद जी के समय में ही कथा-लेखन में प्रवृत्त हो चुके थे। इस धारा के कथाकारों ने भी यद्यपि प्रेमचंद जी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की उपेक्षा करते हुए मनोविज्ञान के सहारे निरा यथार्थवाद का पल्ला

पकड़ा लेकिन इन्होंने भी नागार्जुन की भाँति उनकी सामाजिकता को कही भी कभी भी उपेक्षित नहीं रखा। यही कारण है कि ये मनोविश्लेषणवादी प्रकृति के उपन्यासकार होते हुए भी सामाजिक कोटि के उपन्यासों तथा कहानियों की रचना करने में सफल रहे।

जिस समयावधि में जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में मनोविश्लेषणवाद तथा बाबा नागार्जन के यहाँ आँचलिकता और सामाजिकता मिश्रित कृषको, मजदूरों आदि के शोषण व संघर्ष, उत्पीड़न का चित्रण अपने यथार्थवादी स्वरूप में उत्कर्ष पर था, लगभग उसी समय हिन्दी साहित्य रूपी नक्षत्राकाश में अब्दुल बिस्मिल्लाह रूपी टिमटिमाते तारे का उदय होता है। यद्यपि इनके धरावतरण के समय भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ न तो स्थिर ही थी और न ही अच्छी थी लेकिन इनके साहित्यिक देशाटन के आरम्भ होने तक भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ या तो परिवर्तित हो चुकी थी या फिर परिवर्तन की कगार पर खड़ी थी। इसी तरह साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी अब तक अमूल-चूल परिवर्तन हो चुका था। समकालीनता का दौर आरम्भ होने से जनवादी साहित्य की ओर अब अधिक झुकाव दृष्टिगोचर होने लगा था। आँचलिकता के वाहक फणीश्वरनाथ रेणु तथा मनोविश्लेषणवाद के संवाहक अज्ञेय की साहित्यिक यात्रा अब-तक पूरी हो चुकी थी इसलिए अब्दुल बिस्मिल्लाह जी जब साहित्य-सृजन कर्म में प्रवृत्त होते हैं तो इस संदर्भ में से सैद्धांतिक, वैचारिक एवं पारम्परिक अनुकरण के लिए उनके सम्मुख जैनेन्द्र और अज्ञेय का मनोविश्लेषणवाद भी था तो रेणु तथा नागार्जुन की आँचलिकता भी थी। इन दोनो पारम्परिक वैचारिक मार्गो के अतिरिक्त जहाँ उनके पास नागार्जुन द्वारा संरक्षित सामाजिकता के मार्ग पर चलने का विकल्प मौजूद था वही तद्‌युगीन नवीन परिस्थितियों, प्रवृत्तियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप एक नितांत नवीन सैद्धारिक-वैचारिक मार्ग का प्रस्तावक बनने का अवसर भी विद्यमान था।

यद्यपि बिस्मिल्लाह जी ने सामाजिकता के मार्ग पर चलना ही उचित समझा लेकिन इस सैद्धांतिक मार्ग के प्रस्तवण का श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता है। कारण यह है कि इनसे पूर्व साहित्य में सामाजिकता की जो प्रकृति रही थी वह कभी भी शुद्ध नहीं रहने पाई थी। प्रेमचंद जी ने इस सामाजिकता में जहाँ आदर्शवादिता अंर्तभुक्त की थी वही रेणु ने इसमे आँचलिकता तथा जैनेन्द्र व अज्ञेय ने मनोविश्लेषणवाद का अंतर्वेशन किया था। इसी तरह से बाबा नागार्जुन की सामाजिकता भी देशज अस्मिता की ओर अधिक उन्मुख थी। अत: सही मायनो में शुद्ध सामाजिकता को सैद्धांतिक मार्ग के निर्माता एवं उस पर चलने वाले पहले कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ही है।

अपनी विविध आयामी प्रतिभा एवं उन्नत रचनाधर्मिता की नाव पर सवार होकर बिस्मिल्लाह जी ने साहित्य रूपी समुद्र के नितल तक अपनी पैठ बनाने में सफल रहे साथ ही साहित्य के सभी क्षेत्रों में समान मात्रात्मकता एवं परिमाणात्मकता के साथ समान सृजनशीलता के साथ विहार किया है। इनकी लेखनी से प्रादुर्भूत सर्जनाएँ भारतीय जनमानस को अंतर्मन, विचार, व्यवहार और क्रियान्व्यापार आदि की नैसर्गिक अभिव्यक्ति हैं जिनके माध्यम से ये कही प्रेमचंद जी की परम्परा से जुड़ते तो कहीं उनसे सर्वथा स्वतंत्र मार्ग निर्मित करते दिखाई देते हैं। यद्यपि बिस्मिल्लाह जी के साहित्यावतरण से पूर्व हिन्दी के कथा-साहित्य ने अपूर्व श्रीवृद्धि हामिल कर ली थी और अब तक उसमे सामाजिकता का पर्याप्त समावेशन हो चुका था लेकिन यह सम्मिलन समाहार या अंतर्वेशन सहानुभूति अथवा साक्षात्कार पर ही आधारित था, न कि स्वानुभूति या अनुभवजन्य भोगे हुए यथार्थ पर। बिस्मिल्लाह जी ने शुद्ध सामाजिकता की पृष्ठभूमि पर सृजित अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के द्वारा सही संदर्भों में पहली बार इस विसंगति को अपनी अनुभूतियों एवं अनुभवों के आधार पर दूर किया। मुस्लिम समाज में रहते हुए उन्होंने जो कुछ भी अनुभूत किया तथा हिन्दू-समाज की जो परिस्थितियाँ-प्रवृत्तियाँ उन्हें अपने परिवेश में दृष्टिगोचर हुई उन्ही को भाव, विचार, अनुभव, अभिव्यक्ति आदि के रूप मे इन्होंने अपनी कहानियों व उपन्यासों में

उडेल दिया है। इसी प्रवृत्ति से निकली हुई सामाजिकता की रसधारा बिस्मिल्लाह जी के कथा-साहित्य में अंत्यंत वेग से प्रवाहित होती दिखाई देती है जिसके रसास्वादन के उपरांत पाठक उनके द्वारा कल्पित पात्रों, कथानकों, परिवेश आदि को साहित्यिक समझकर स्वयं का अंश अनुभूत करता है। नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा तथा विलक्षण विचारशीलता से संपन्न बिस्मिल्लाह जी ने अपनी लेखनी रूपी तूलिका के द्वारा साहित्य की अनेक आधुनिक विधाओं में समकालीन भारतीय जीवन का वास्तविक रंग भरने का सफल प्रयास किया है। इन सर्जनाओं में से कुछ तो साहित्य की प्रसिद्ध विधाओं से अंतर्संबंधित है, जैसे कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, निबंध और समालोचना आदि लेकिन विधाएँ अत्याधुनिक प्रकृति की हैं जिनमें लोककाव्य, बाल कहानियाँ आदि सम्मिलित है।

बिस्मिल्लाह जी के साहित्यिक प्रदेय को उत्कर्ष पर पहुँचाने में प्रत्येक विधागत सृजन-कर्म का समान योगदान रहा है और सभी गुणात्मकता की दृष्टि से अपने समान स्वरूप एवं गुणधर्म संबंधी सर्जनाओं से बीस ही सिद्ध होती हैं लेकिन उनकी ख्यातिलब्धता का केंद्रीय आधार उनका कथा-साहित्य ही है। कारण यह है कि समकालीन भारतीय परिवेश से आधुनिक जनवादी साहित्य का सामंजस्य संस्थापित करने के लिए आदर्शों एवं जबरन अधिरोपित मूल्यों के स्थान पर वर्तमान जनसमूह की यथार्थपरक चित्तवृत्तियों, उसकी परिस्थितियों और प्रवृत्तियों का साहित्य में सन्निवेश कराना अपरिहार्य हो गया है। ऐसा करने का सर्वाधिक सुगम और उपयुक्त माध्यम कथा-साहित्य हो सकता है क्योंकि इसकी प्रकृति घटनात्मक होने के साथ-साथ जिज्ञासिक भी होती है। बिस्मिल्लाह जी ने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के माध्यम से यही किया है जिसमें उन्होंने ग्रामीण एवं नगरीय जीवनको प्रतिबिम्बित कर दिया है। ऐसा करने मे उन्हें उपन्यास के माध्यम से अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उपन्यासो में भी इनके 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास का रचना-विधान विशिष्ट महत्व का रहा है क्योकि इसके ताने-बाने मे अब तक उपेक्षित मुस्लिम समाज अपनी सभी संगतियों-विसंगतियों के साथ चित्रलिखित हो उठा है। इसी तरह

महाकाव्यात्मक औदात्य के उनके अन्य उपन्यासों में भी समकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का तीव्र स्वर सहजता से अनेकशःसुना जा सकता है। उनकी कहानियाँ भी इसी प्रवृत्ति की पोषक संरक्षक हैं, जिनमें चित्रित परिवेश, वर्णित घटना-वृत्त, पात्र तथा मनोव्यापार आदि अपने देशकाल एवं वातावरण की यथार्थपरक और स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रतीत होते है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य (विशेषतः उनके कथा-साहित्य में अभिव्यक्त चेतनावादी स्वर) की युगीन और क्रांतिकारी प्रवृत्तियों की बनावट को भलीभाँति समझने के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम उनके जीवन और युगीन परिवेश की परिस्थितियों एवं उनमें परिचालित घटनाओं, परिवर्तनों आदि पर सम्यक दृष्टिपात कर लिया जाय। दरअसल साहित्यिक सर्जनाएँ अपने देशकाल और वातावरण का युगसत्य होने के साथ-साथ सर्जक की स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति भी होती है। इसी तरह सर्जक के व्यक्तित्व निर्माण एवं उसकी अंतवृत्तियों के विकास में उसकी वातावरणीय प्रभावोत्पादकता अनमनीय भूमिका निभाती है। इस आधार पर प्रत्येक सृजन-कर्म युगबोध की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ आत्माभिव्यक्ति भी होता है। रचनाकार अपने भौतिक जीवन से अनुभव अर्जित करता है। इस अनुभव में उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक परिस्थिति, शिक्षा, गृहस्थ जीवन और सामाजिक स्थिति आदि का प्रत्यक्षतःअथवा परोक्षत: आधारिक अवदान अवश्य रहता है। इसलिए किसी रचना के भाव पक्षीय एवं कलापक्षीय वैचारिक-भाषिक ताने-बाने को सम्पूर्णता के साथ समझकर उसका पूर्ण रसास्वादन करने या उसमे अंतर्भुक्त भावों-विचारों का अभिधार्थ प्राप्त करने या फिर सर्जक की मानसिक बनावट में प्रयुक्त धागों का भली भाँति परीक्षण करने के लिए संबंधित सर्जना के सर्जक की व्यक्तिगत जीवनानुभूतियों, चित्तवृत्तियों, व्यक्तित्व विधायनी परिस्थितियों और सामाजिक स्थितियों आदि का अध्ययन-अनुशीलन अथवा विवेचन-विश्लेषण अपरिहार्य हो जाता है।

1.1- जीवन-वृत्त का विश्लेषण

बिस्मिल्लाह जी का धारावतरण एवं आरम्भिक जीवन समकालीन हिन्दी साहित्यकारों में सर्वाधिक ख्यातिलब्ध कवि, कथाकार, नाटकार एवं विमर्शकार अब्दुल बिस्मिल्लाह का धरावतरण 5 जुलाई सन् 1949 ई० को उत्तर-प्रदेश प्रांत के वर्तमान प्रयागराज जनपद के अंतर्गत आने वाले बलापुर नामक गाँव में हुआ। उनके व्यक्तित्व के निर्माण में इस गाँव के प्राकृतिक एवं भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बिस्मिल्लाह जी के पिता का नाम वलीमुहम्मद था। वली मुहम्मद ने कुल चार शादियाँ की थी। इनमें से पहली पत्नी से विवाह-विच्छेद हो गया था जबकि दूसरी पत्नी असमय ही कालकवलित हो गयी थी। तीसरी पत्नी हिन्दू धर्मावलम्बी थी। किसी कारण वश इनसे भी संबंध ख़त्म करने के लिए विवाह-विच्छेद करना पड़ा। चौथी और अंतिम पत्नी का नाम करीम नबी था जिनके गर्भ से बिस्मिल्लाह जी का जन्म हुआ। इस तरह से बिस्मिल्लाह जी अपने पिता वलीमुहम्मद की चौथी पत्नी करीमनबी के पुत्र थे। अपने जन्म संबंधी एक घटना-वृत्तात के विषय में इन्होने बताया है कि- "मेरी माँ के बच्चे एक वर्ष के होते ही मर जाते थे। मैं जब अपनी माॅं की कोख में था तब मेरी माँ को किसी फकीर ने दुआ दी कि तुझे लड़का होगा और बहुत नाम कमाएगा। माँ दुआ सुनकर रोने लगी और फकीर से कहने लगी कि मेरे बच्चे जीवित नहीं रहते हैं। एक साल के होकर मर जाते है। तब फकीर ने कहा कि यह जिएगा इसका नाम बिस्मिल्लाह रखना। मैं जी गया और मेरे बाद जो भी पैदा हुए मर गए।"

फकीर द्वारा सुझाए गये इसी बिस्मिल्लाह नाम से पूर्व के स्कूल के अध्यापक ने अब्दुल नामक व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द जोड़कर इनका नाम अब्दुल बिस्मिल्लाह कर दिया। तब से इनका नाम अब्दुल बिस्मिल्लाह कर दिया गया। तभी से यही नाम सदा-सर्वदा के लिए स्थिर हो गया। कालांतर में भी इन्होने या इनके परिजनो ने न तो इस नाम में कोई परिवर्तन किया

और न ही इसके आगे-पीछे पिताजी के नाम एवं उनकी जाति के बोधक शब्दों को ही जोड़ा। इनके पिता वली मुहम्मद जाति से सिद्दकी तथा उर्दू, अरबी तथा फारसी भाषा के विद्वान थे लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। हालाँकि वे स्वाभिमानी प्रकृति के शौकीन इंसान थे। आर्थिक दशा ठीक नही होने पर भी इन्होने अपना शौक पूरा करने के लिए ही वन-विभाग में नौकरी करने का फैसला किया था। परंतु वन-विभाग के अधिकारियों के साथ मतभेद होने के कारण नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । इनका गृह-जनपद इलाहाबाद मध्य-प्रदेश प्रांत से अपनी सीमा साझा करता है। इनकी पत्नी का मायका इसी सीमा के समीपवर्ती इलाके में था। अपनी खस्ताहाल आर्थिक स्थिति के दृष्टिगत ही इन्होंने अपने ससुराली गाँव में हिनौता में नौकरी की थी। यह हिनौता गाँव मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के अंतर्गत आता है जहाँ उनकी पत्नी करीमनबी का मायका था। क्योंकि वलीमुहम्मद इसी इलाके में वन-विभाग की नौकरी करते थे इसलिए बिस्मिल्लाह जी को अधिकांश बचपन मण्डला गाँव की रम्यवादियों, उपत्यकाओं व वन-प्रांतरों के बीच व्यतीत हुआ। ननिहाल में बिताये बचपन और वहाँ की प्राकृतिक मनोहरता को बिस्मिल्लाह जी कभी विस्मृत नहीं कर सके।

वन-विभाग की नौकरी का परित्याग करने के उपरांत वली मुहम्मद अपने गाँव बलापुर वापस आ गये और यहाँ आकर चमड़े का व्यवसाय करने लगे। आजीविका चलाने के लिए बीच-बीच में रंगाई-पुताई एवं मछली पकड़ने का भी कार्य कर लिया करते थे। कुछ समय तक राजनीति में भी हाथ अजमाते रहे लेकिन वहाँ भी इन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई। वलीमुहम्मद को किसी भी व्यवसाय मे सफलता नहीं मिली जिसके परिणामस्वरूप इनकी आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिक दुर्दांत होती गयी। धनाभाव के कारण पति-पत्नी के रिश्ते मे भी कड़वाहट आयी फलस्वरूप पत्नी के साथ झगड़ा और मारपीट की घटनाऐं दिनोदिन बढ़ने लगी। अपनी अर्द्धांगिनी करीम नबी के आभूषणों को गिरवी रखकर चमड़े का व्यवसाय आरम्भ किया था लेकिन यह धंधा घाटे में रहा जिसके कारण सारा पैसा फँस

गया और खाने के लाले पड़ने लगे। इस समय परिवार में गरीबी का यह आलम था कि भूख से मरने की नौबत आ गयी थी। यही से बिस्मिल्लाह जी के जीवन-यात्रा के साथ-साथ गरीबी की यात्रा भी आरम्भ होती है जो कि काफी दूर तक इनके जीवन के समानांतर गतिमान रही। यद्यपि बिस्मिल्लाह जी की माता करीमनबी का मायका बहुत बड़ा था लेकिन उनके भाई अत्यंत गरीब थे। करीमनबी अशिक्षित होते हुए भी संस्कारवान, संघर्षशील एवं कर्मठी प्रवृत्ति की महिला थी। अपने पति वली मुहम्मद की नौकरी छूटने तथा चमड़े के व्यापार मे घाटा होने पर आरम्भ मे इन्होंने ही घर-गृहस्थी को चलाने की जिम्मेदारी निभाई थी लेकिन पति की अन्याय, अत्याचार और प्रताड़ना जब इनके लिए असहनीय बन गयी तब इन्होने उनसे तलाक ले लिया। विवाह-विच्छेद के कुछ समय बाद ही जंगल मे दुर्घटनावश एक पेड़ के नीचे दब जाने से असमय ही दर्दनाक तरीके से 10 अप्रैल 1963 ई० को इनकी जीवन लीला समाप्त हो गयी।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के जीवन का आरम्भिक सोपान अर्थात् उनकी बाल्यावस्था अत्यंत ही मुफलिसी की अवस्था में व्यतीत हुई। नौकरी छोड़ने और पत्नी की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के बाद पिता वलीमुहम्मद के साथ ये भी अपने जन्म स्थान बलापुर आ गये। क्योंकि आर्थिक परिस्थितियाँ नितांत प्रतिकूल थी इसलिए परिवार में पिता और पुत्र दोनों के साथ दुर्व्यहार होने लगा। वलीमुहम्मद के भाई और भाभी ने बेरोजगारी के कारण इनकी स्वयं पर निर्भरता का बखूबी फायदा उठाते हुए घर का अधिकांश कार्य इन्ही पिता-पुत्र के जिम्मे सौंप दिया। अपने एवं पुत्र की क्षुधा-तृप्ति के लिए भाभी द्वारा निर्देशित कार्यो को करना पड़ता था। अब्दुल बिस्मिल्लाह भी अपनी सामर्थ्य के अनुरूप पिता के कार्यो में सहयोग किया करते थे इसलिए पढ़ने-लिखने अथवा कलम पकड़ने की उम्र में इन्हें बकरियाँ चराने, पानी ढो़ने, लकड़ियाँ लाने, चद्दर धोने तथा गोबर उठाने जैसे अवांछित कार्य करने पड़े थे। दरअसल आर्थिक परिस्थितियाँ ही मनुष्य की जीवन स्थितियों की निर्धारक होती है।

जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नही होती उनका अधिकांश जीवन अभावग्रस्त अकर्मण्यता और भाग्यवादिता के सहारे व्यतीत होता है। लेकिन जैसा कि पहले ही उल्लिखित हो चुका है कि बिस्मिल्लाह जी परिस्थितियों के सम्मुख नतमस्तक होने वालो में से नही बल्कि प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में संघर्ष करते हुए अपनी जीवतता बनाए रखने वालों मे से थे। उनके व्यक्तित्व में अंतर्भुक्त संघर्ष की यह भावना माता करीम नबी से दया स्वरूप प्राप्त हुई थी। धनाभाव की स्थिति में ये केवल अकिंचनता तथा अभावग्रस्तता से ही संघर्ष नही कर रहे थे बल्कि उस समय इनका संघर्ष बालमन की प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं व आकांक्षाओ आदि के साथ भी जारी था। एक बालक के अंतर्मन की आवश्यकताएँ अत्यंत सीमित होती है। उसे मनचाह भोजन, मिठाईयाँ, वस्त्र आदि प्राप्त हो जाएँ दोस्तो के साथ खेलने और पढ़ने को मिल जाय-बस यही आकांक्षा हो बाल मनोविज्ञान की होती हैं। लेकिन आर्थिक विपन्नता की स्थिति ने बिस्मिल्लाह जी की बाल आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओ को गरीबी की मोटी जजीरों में कैद कर दिया था। मनचाहा खाने और मनचाहा पहनने की लालसा को दबाए इनका बचपन कटे-फटे वस्त्रों तथा टूटी चप्पलो के सहारे. ही व्यतीत हुआ। माता जब तक जीवित थी, और साथ में रहती थी लेकिन उनकी अनुपस्थिति में इनकी न्यूनातिन्यून आवश्यकताएँ भी पिता के द्वारा कभी पूरी नही हो सकी। माता-पिता के बीच होने वाले रोजमर्रा के झगड़े और मारपीट तथा अंत में विवाह-विच्छेद से इनका बाल अंतर्गत व्यथित हो उठता था। इनकी बाल्यावस्था पर जितना अधिक नाकारात्मक प्रभाव विषम आर्थिक परिस्थितियों का रहा है उससे कहीं अधिक माता-पिता के असफल वैवाहिक जीवन ने इनके बचपन को प्रभावित किया है। परिवार की गरीबी ने तो इनकी बाल आवश्यकताओ, आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों आदि का ही शमन किया था लेकिन माता-पिता के दाम्पत्य जीवन की उथल-प्रचल ने इनकी संवेदनाओं, अनुभूतियो आदि पर कुठाराघात किया। परंतु इस विषय से विषमतर परिस्थिति मे भी ये न केवल विपरीत आर्थिक और पारिवारिक परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे बल्कि इस दशा मे भी पढ़-लिखकर एक बड़ा

और अच्छा इंसान बनने की अपनी स्पृहा को भी समुचित पोषण देते रहे, जो कि इनके बाल्यकाल का सर्वाधिक सकारात्मक एवं प्रभावशाली पक्ष रहा है।

बिस्मिल्लाह जी का बाल्यकाल सामान्य में नैनिहालों के बचपन की तरह नहीं व्यतीत हुआ है। अर्थाभाव तथा पारिवारिक कलह के अतिरिक्त पिता का असंवेदनशील व्यवहार भी इसके लिए उत्तरदायी रहा है। उन्हें अपने पित्रादेश का कठोरता के साथ पालन करते हुए उनके कार्यो में भी सहयोग करना पड़ता था। मछलियाँ पकड़ने, चमड़े का करोबार करने तथा जंगल से हड्डियाँ बीनने में इन्हें पिता का भरपूर सहयोग करना पड़ता था। इसी व्यस्तता के कारण जहाँ इनका बचपन खेलकूद से वंचित रह गया वही इन्हें अच्छे एवं घनिष्ठ मित्रों की मित्रता का भी सुख-लाभ नही प्राप्त हो सका। जो कुछेक समान परिस्थिति वाले गिने-चुने मित्र थे भी, वे भी समय के साथ दूर होते गए। अर्थाभाव की व्यापकता के कारण बालक अब्दुल बिस्मिल्लाह धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यो, मेलो, पर्व-त्यौहार एवं उत्सवों आदि के प्रति अन्यमनस्क अथवा निरुत्साही रहा करते थे। ईद मुस्लिम समाज का सर्वाधिव महत्त्वपूर्ण त्यौहार है लेकिन इस अवसर भी ये कभी अधिक उत्साहित न होकर परिस्थितियों के अनुरूप पुराने कपड़े पहनकर तथा सगे-संबंधियों द्वारा दी हुई सेवैया खाकर ईद मनाया करते थे। कभी-कभी तो इस खुशी के अवसर पर भी इन्हें भूखे ही सो जाना पड़ता था। इसी तरह जब कभी ये बीमार होते थे तो पैसो के अभाव में दवाइयों की जगह घरेलू नुस्खों से इनका इलाज किया जाता था। वैसे तो इनका समग्र जीवन मुसीबतों से टकराने में ही व्यतीत हुआ लेकिन इनमें से कुछ मुसीबतें ऐसी भी थी जिन्होंने इसके अंतर्मन को झकझोर कर रख दिया। बचपन में ही सिर पर से माता-पिता का साया उठ जाना अर्थात् अनाथ हो जाना इसी तरह की हिमालय सदृश्य मुसीबत थी।

जिन समय दुर्घटनावश इनकी माता चिरकालीन निद्रा में लीन हुई उस समय इनकी उम्र बारह-तेरह साल की थी और ये आठवीं कक्षा में पढ़ते थे। माता के परलोक गमन के

ग्यारह-बारह महीने के अंतराल पर पिता वलीमुहम्मद भी 14 अप्रैल 1964 ई° गोलोकवासी हो गए। पिता भले ही गरीब और कष्ट व संवेदनहीन स्वभाव के थे लेकिन जैसे भी थे माता की मृत्यु के बाद यही बिसिल्लाह जी के लिए सबसे बड़ा सहारा थे। पिता की मृत्य के उपरांत ये केवल यतीम तथा आश्रय हीन ही नही अपित बेघर भी हो गए। इनके चाचा-चाची और अन्य सगे-संबधियों ने मिलकर षड़यंत्र द्वारा इन्हें घर से निकाल दिया। सभी को डर था कि बालक बड़ा होकर सम्पत्ति में से पिता का हिस्सा माँगेगा। इस गृह निष्कासन के उपरांत बिस्मिल्लाह जी के जीवन में एक तरह का भटकाव आरम्भ हुआ पहले तो इन्हें इनके पिता की तीसरी हिन्दू पत्नी की एक पुत्री ने आश्रय दिया लेकिन किसी कारणवश यहाँ भी इनका अधिक दिनो तक ठिकाना नही रहा और इन्हें यह आश्रय भी शीघ्र ही छोड़ना पड़ा। इसके उपरांत ये कुछ समय के लिए अपने रिश्तेदारों के शरणारांत भी हुए परंतु वहाँ से भी इन्हें निकल दिया गया। इस तरह से कह सकते हैं कि बिस्मिल्लाह जी का बचपन केवल अभावग्रस्तता एवं पारिवारिक कलह के बीच ही नहीं अपितु षड्यंत्र, लाचारी, उपेक्षा, भटकाव तथा निर्वासन के बीच भी व्यतीत हुआ। अपनी बाल्यावस्था संबंधी इन सभी विसंगतियों को बिस्मित्लाह जी ने कालांतर में 'जहरबाद' एवं 'समर शेष है' शीर्षक आत्मकथात्मक प्रकृति के उपन्यासों में औपन्यासिक ताने-बाने का स्वरूप प्रदान किया। यद्यपि इनका बचपन विपन्नता, बेबसी और लाचारी की स्थिति में ही व्यतीत हुआ लेकिन इन दुर्दांत स्थितियों में भी बालक बिस्मिल्लाह कभी विचलित नहीं हुए, बल्कि परिस्थितियों का डटकर सामना करते रहे और अंततःइस संघर्ष में विजयी रहे।

शिक्षा एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

बिस्मिल्लाह जी की प्राथमिक शिक्षा इनके ननिहाल मध्यप्रदेश के मण्डला जनपद के हिनौता नामक गाँव में ही संपन्न हुई। हिनौता का यह विद्यालय उनके पिता वलीमुहम्मद के अथक प्रयासो से उस समय खुला था जब वे यहाँ रहते हुए वन-विभाग की नौकरी करते थे।

यहा पढ़ने के लिए भी विस्मिल्लाह जी को असंख्य संघर्षो का सामना करना पड़ा। माता-पिता बालक की तालीम को लेकर रंचमात्र भी उत्साहित नही थे लेकिन पढ़ाई के लिए बालक मे द्दढ इच्छाशक्ति तथा अटूट आत्मविश्वास संचित था। पिता-पुत्र की कई राते यही सोचने मे बीत जाती थी कि उन्हे आगे क्या करना है। यदि पढ़ने का विकल्प चुनते तो पिता के कार्यों में सहयोग कौन करता तथा यदि पढ़ाई छोड़कर पिता के मार्ग का अनुसरण करते हो जीवन कैसे बदलता इस समय परिस्थितियों के अनुरूप बिस्मिल्लाह जी के लिए जहाँ शिक्षा-ग्रहण करना जरूरी था क्योकि अब तक उन्हें यह बोध हो गया था कि एक सामान्य इंसानी जीवन जीने के लिए शिक्षा की वर्तमानता अपरिहार्य है, वही उनके पिता के लिए परिवार के भरण-पोषण के रूप में स्वाभिमान संरक्षण अधिक जरूरी था।

बिस्मिल्लाह जी अपने और पिता दोनो के विचारों के मध्य सामंजस्य सुस्थित रखते हुए पढ़ाई के साथ-साथ पिता के कार्यो में भी सहयोग करते रहे जिसके कारण बीच-बीच में स्कूली शिक्षा अवरुद्ध भी हो जाती थी। इस तरह से अत्यंत विषम परिस्थितियों मे संघर्षरत रहते हुए इन्होने अपनी आरम्भिक शिक्षा पूर्ण की। बचपन से ही संघर्षशील और मेहनती प्रवृत्ति रखने वाले बिस्मिल्लाह जी कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। पढ़ाई के प्रति इनकी इच्छा शक्ति इतनी अधिक द्दढ थी कि इधर-उधर गिरे-पड़े अनावश्यक कागजो को भी ये खोलकर पढ़ने लगते थे। अपने एक साक्षात्कार में इन्होंने बताया है कि "बाजार से कोई चीज कागज में बाँधकर आती थी उस कागज को मैं बड़े शौक से लेता और उस पर लिखी हुई बात पढ़ने लगता था।" बिस्मिल्लाह जी की उच्च प्राथमिक शिक्षा अर्थात् जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा मध्य प्रदेश के दुल्लोपुर के मिशन स्कूल में संपन्न हुई जिसके बाद इस प्रांत से इनका समस्त शौक्षणिक संबंध समाप्त हो गया, क्योंकि अब ये अपने पैतृक गाँव बलापुर वापस आ गये थे।

मिर्जापुर इलाहाबाद का सीमावर्ती जिला है। इसी जनपद के लालगंज कस्बे में स्थापित बापू पुरोध इण्टर कॉलेज से बिस्मिल्लाह जी ने अपनी हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनकी यह शिक्षा भी अगणित संघर्षो के बाद ही संपन्न हो सकी थी। हाईस्कूल की शिक्षा के दौरान इन्हे अपनी सौतेली बहन और बुआ के यहाँ रहना पड़ा था। यहाँ रहते हुए ताने से बचने और क्षुधा-दृष्टि के लिए भोजन प्राप्त करने के लिए चमड़ी पर नमक लगाने, बीडियाँ बनाने, लकड़ियाँ काटने और पानी भरने का का कार्य भी करना पड़ा। ये अपने सगे-संबंधियों को माता-पिता तुल्य मानते थे इसलिए उनके द्वारा अपने प्रति किए जाने वाले अन्याय और अत्याचार को भी अपने लिए वरदान समझते थे। विवशता एवं लाचारी की पराकाष्ठा में कभी-कभी इनका अंतर्मन अनुभूत करने लगता था कि इनका धरावतरण रिश्तेदारो की सेवा-शुश्रवा के उद्देश्य से ही हुआ है। इसी मानसिक अधोगति में इन्होंने अपनी इण्टरमीडिएट की परीक्षा 1968 ई° उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में इन्हें विद्यालय में सर्वाधिक अंक मिले थे। विद्यालय के प्रधानाध्यापक से इनकी विशेष अनुरक्ति थी वे एक पिता की भाँति इनसे स्नेह रखते हुए प्रत्येक विषय परिस्थिति में इनका मार्गदर्शन किया करते थे। इण्टरमीडिएट की शिक्षा पूरी हो जाने के बाद अपनी आर्थिक समस्याओं के दृष्टिगत बिस्मिमिल्लाह जी नौकरी खोजने मे लग गए लेकिन प्रधानाध्यापक जी ने इन्हें आगे की पढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया। इसके उपरांत इन्होने मिर्जापुर के° वी° डिग्री कॉलेज से सन् 1968 ई° में स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के लिए बी० ए० में प्रवेश लिया। इस समय दाखिले के लिए आवश्यक फीस के अस्सी रुपये इनके पास नहीं थे। इसकी व्यवस्था के लिए इन्हें अपनी माँ करीमनबी के के रिक्थ स्वरूप अवशेष एकमात्र भोपाली गजरे को बेचना पड़ा। स्नातक की शिक्षा के दौरान भी इसका जीवन-संघर्ष यथावत जारी रहा। अपनी आर्थिक समस्याओं के निदानार्थ इन्होंने अनेक का तरह की नौकरियाँ की थी। पढाई सन् 1970 ई° में जारी रखने के लिए उन्हें कुछ समय के लिए मजदूरी तक करनी पड़ी थी। स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद बिस्मिल्लाह जी ने परास्नातक की शिक्षा के लिए पूर्व

का ऑक्सफोर्ड नाम की विख्यात रहे इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। जिस तरह से ऑक्सफोर्ड विश्विवद्यालय में आरम्भ से ही डी० फिल (डॉक्टर ऑफ फिलासॉफी) की उपाधि प्रदान की जाती है ठीक उसी तरह से उत्तर-भारत के इस बहुचर्चित केन्द्रीय विश्वविद्यालय में भी आरम्भ से ही डी० फिल की उपाधि दी जाती रही है। इसी समतोलन के आधार पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की 'पूरब का ऑक्सफोर्ड' कहा जाता रहा है। बिस्मिल्लाह जी ने इस विश्वविद्यालय से परास्नातक करने के उपरांत यहा से सुविख्यात कवि जगदीश गुप्त के निर्देशन में 'मध्यकालीन हिंदी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय' विषय पर डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्ति की। इस तरह से शिक्षा प्राप्ति के प्रति जो दृढ़ इच्छाशक्ति और समर्पण की भावना इनमे बाल्यावस्था में प्रादुर्भूत हुई थी उसकी व्यावहारिक परिवर्तित डी° फिल की उपाधि रही। उनके जीवन-संघर्ष की विजय इस प्रकृति में होगी शायद इसकी कल्पना भी इन्होने कभी नही की होगी। भारत का मुस्लिम समाज शिक्षा और लोक-व्यवहार दोनो के लिए अधिकांशतः उर्दू भाषा को ही आधार बनाता रहा है जिसके कारण उसके लिए हिन्दी भाषा का सघनतम ज्ञान प्राप्त करना सदैव दुष्कर रहा है। इस कार्य की दुष्करता को दूर करने का कार्य भी बिस्मिल्लाह जी ने ही किया। उन्होने न केवल हिन्दी को आधार बनाकर विद्या वारिधि को उपाधि प्राप्त की अपितु इसी भाषा की साहित्यिक श्रीवृद्धि भी अनिश्चित की। अपने जीवन मे जितना संघर्ष इन्हे अपनी विषम आर्थिक परिस्थितियों से करना पड़ा लगभग उतनी ही जद्दोजहद इन्हें हिन्दी के संदर्भ में करनी पड़ी। अपने परिवार और समाज की भाषिक परिधि को लांघने के लिए इन्हें पिता के संकुचित भाषाई दृष्टिकोण का भी प्रतिरोध करना पड़ा। बिस्मिल्लाह जी के ही शब्दों में "पिताजी उर्दू के सिवा हमें कुछ भी पढ़ने का आदेश नहीं देते थे। अगर उस समय हिन्दी आवश्यक न रहती तो हम कदापि हिन्दी नहीं पढ़ सकते थे । पिताजी हिन्दी से सख्त नफरत करते थे।"

जैसा कि उल्लिखित हो चुका है कि बिस्मिल्लाह जी के पिता वलीमुहमद ने कुल चार शादियाँ की थी जिसमें से उनकी चौथी पत्नी करीबनबी की संतान होने को सौभाग्य इन्हें इन्हें प्राप्त हुआ था। क्योंकि इनका कोई भी सहोदर जन्म के बाद अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका इसलिए अंतिम रूप से ये अपनी अपने माता-पिता की इकलौती संतान है। इनका परिवार आकार में छोटा ही था जिनमे माता-पिता के साथ केवल यही शामिल थे। आर्थिक विपन्नता की स्थिति मे इन्हें पिता के साथ चाचा-चाची का आश्रय लेना पड़ा था। भटकाव, बेवसी लाचारी, निर्वासन आदि परिस्थितियो मे आये अपने सगे-संबंधियो के भी शरणागत रहे। यद्यपि बिस्मिल्लाह जी की यौनावस्था तक की जिंदगी अत्यंत मुफलिसी एवं जिल्लती से भरी रही हुयी लेकिन उनका वर्तमान जीवन सुखमय तथा वैभवपूर्ण दिखाई देता है।

इनकी वर्तमान जीवनगत परिस्थिति में सन्निहित सुस्थिरता, शांति एवं सरलता में इनकी पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रगतिशील एवं मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित बिस्मिल्लाह जी का विवाह लखनऊ जनपद के फतेहपुर गाँव की रहने वाली असमत फातेमा के साथ हुआ है जिन्हें ये प्यार से हाशमी नाम से संबोधित करते है। अपने विवाह के संदर्भ में वे बताते हैं- "मेरा विवाह नौकरी मिलने के बाद हुआ है। यह विवाह मेरी मर्जी से उचित समय पर तथा इस्लामी रीति-रिवाज के अनुसार हुआ है। मेरी ससुराल लखनऊ जिले के फतेहपुर नामक गाँव की है।" बिस्मिल्लाह जी अपने वैवाहिक जीवन से संतुष्ट है क्योकि पिता की तुलना में इनका दाम्पत्य जीवन अधिक सफल और सुस्थिर है। इनकी जीवन संगिनी असमत फातेमा संपन्न घर की सुशिक्षित एवं संस्कारवान गृहस्थ महिला है। इनसे बिस्मिल्लाह जी की तीन संतानों की प्राप्ति हुई है जिनमें दो लड़कियाँ शिरी और एकरा तथा एक लड़का हिलाल शामिल हैं। बिस्मिल्लाह जी की तीनों संताने आधुनिक तथा प्रगतिशील विचार संपन्न अंग्रेजी भाषा को अधिक महत्त्व देने वाली है और उच्च-शिक्षा प्राप्ति की ओर अग्रसर है।

अध्यापन कार्य एवं मित्र- मण्डली

जैसा कि पूर्ववर्ती प्रकरण में उल्लिखित हो चुका है कि वैसे तो बिस्मिल्लाह जी को अपने पिता के पारम्परिक पेशे में सदा सहयोगी बने रहने के कारण इन्हें नौकरी करने का समय ही नही मिलता था लेकिन इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के उपरांत आर्थिक विसंगतियो को दूर करने तथा आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए ये नौकरियाँ तलाशने लगे। स्नातक की शिक्षा के दौरान इन्होने अनेक जगहों पर छोटी-मोटी नौकरियाँ की भी। संस्थागत शिक्षा की समाप्ति के बाद भी इन्होने अनेक नौकरियाॅं की। अध्यापक बनने की स्पृहा इनमें बाल्यकाल से ही पनपने लगी थी। कारण यह था कि ये अध्यापन कार्य को एक तरह की शहंशाही समझा करते थे। इस समझ के पीछे भी एक ऐतिहासिक घटना-वृत्त कारण स्वरूप विद्यमान था जिसका मौखिक वर्णन वे अग्रलिखित प्रकार से करते है- "जब औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जेल में डाला और उनसे पूँछा कि आप कौन सा काम करना पसंद करोगे? जब जवाब मिला कैदियों को पढ़ाऊँगा। औरंगजेब की प्रतिक्रिया थी शहंशाही नहीं गयी। यानी अध्यापन का अर्थ है शहशाही।"

बिस्मिल्लाह जी ने अपने अध्यापन कार्य का आरम्भ एक स्थानीय स्कूल से आरम्भ किया। कुछ वर्ष पश्चात मित्र प्रकाशन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'माया' के उपसंपादक के पद पर इन्हें नियुक्ति मिली। लगभग इसी समयावधि में कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय हनुमना (मध्य-प्रदेश) में व्याख्याता के पद पर आसीन होने का सौभाग्य इन्हें मिला लेकिन यह अध्यापकीय-वृत्ति केवल सोलह दिनों तक ही चल सकी। इनका प्रथम दीर्घ अध्यापकीय अनुभव बनारस के नेशनल इण्टर कॉलेज से सम्बद्ध रहा है, जहाँ पर सन् 1974 ई° से लेकर सन् 1984 ई° के बीच लगभग दस वर्षो तक लेक्चरर के रूप मे अपनी सेवा प्रदान की। यहाँ सन् 1977 ई° में शिक्षण के दौरान शिक्षक आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता निभाने के कारण इन्हें गिरफ्तार होकर कुछ दिनों तक जेल की रोटी भी खानी

पड़ी। वाराणसी से ही 'कदम' नामक प्रगतिशील विचारों की प्रचारक-संपोषक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जिसके प्रमुख संपादन का भार इन्ही पर था। बाल्यकाल में अध्यापक बनने की जो अभिवृत्ति पनपी थी वह डी० फिल उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद अकस्मात बढ गयी। अध्यापन कार्य की निरंतर बलवती होती उनकी स्पृहा पूर्णता तथा व्यावहारिकता में उस समय परिणत हुई जब सन् 1984 ई° में इन्हें जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय दिल्ली के हिंदी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति मिल गयी। वे संप्रति इसी विभाग में अपनी सेवा देते हुए जीवन का पुनरावलोकन-मूल्यांकन करने में तल्लीन है। इसी अनुक्रम में सन् 1993 ई° से लेकर सन् 1995 ई° तक इन्हें वार्सा विश्वविद्यालय वार्सा (पोलैण्ड) में विजिटिंग एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कार्य का अवसर भी प्राप्त हुआ जहाँ इन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के विविध आयामों से पोलेण्ड के शिक्षार्थियों को अवगत कराया। सन् 1988 ई° में इन्होने सोवियत संघ की यात्रा की तथा इस वर्ष ट्यूनीशिया में आयोजित अफ्रो-एशियायी लेखक सम्मेलन में भी भाग लिया। रूस की राजधानी मास्को में जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना की भारत सरकार ने की है।

भारतीय दूतावास की तरफ से हिन्दी भाषा एवं साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन के हेतु तीन वर्षो के लिए बिस्मिल्लाह जी को सन् 2002 ई० में मास्को भेजा गया जहाँ से अपनी कार्य सिद्धि के उपरांत सन् 2005 ई° में भारत वापस लौटे। इस प्रत्यावर्तन के बाद से वे लेखन और अध्यापन एवं अनुसंधान कार्य में निरंतर व्यस्त है। सहृदय जहाँ इनके साहित्य का रसास्वादन कर रहे है वही छात्र इनके विलक्षण ज्ञान एवं विचार से स्वयं का मानसिक बगीचा सीच रहे हैं। इसी तरह अनुसंधानार्थियों के लिए अनुसंधान का नवीन विषय उपलब्ध कराकर ये उनके भी चितेरे बने हुए हैं। बिस्मिल्लाह जी के सकुशल निर्देशन में जहाँ एम० फिल० एवं पी° एचडी के अनेक शोधार्थियों ने अपना

शोध-कार्य पूरा कर लिया है वहीं इनके व्यक्तित्व और कृतित्व के संदर्भ में देश-विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में संख्यातीत शोध-कार्य अभी भी गतिमान हैं।

गरीबी और संघर्ष के दिनों में बिस्मिल्लाह जी मित्रों की दृष्टि से भी अकिचन थे। यह एक नैसर्गिक सिद्धांत है कि परिस्थितियाँ जब विपरीत होती है मनुष्य-मनुष्य के लिए ही बोझ बन जाता है। ऐसे में कोई वास्तविक मित्रों की संभावना भी स्वतःही समाप्त हो जाती है। यद्यपि संघर्ष एवं मुफलिसी के दौर में बिस्मिल्लाह जी के अधिक मित्र नहीं थे लेकिन जैसे-जैसे ये सफलता की सीढ़ियां चढ़ते गए वैसे-वैसे इनका मित्र-परिवार भी बड़ा होता गया। वैसे तो अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन आदि तीनो पृष्ठभूमियों से अंतर्संबधित अनेक लोगो को बिस्मिल्लाह जी का मित्रवत सानिध्य प्राप्त हो चुका है लेकिन इन मित्रों में से कुछ ऐसे भी हैं जिनकी मित्रता की घनिष्ठता का आकलन किसी भी पैमाने से नही किया जा सकता है। दरअसल ये मित्र न केवल सुख-दुख में सहभागी रहे हैं अपितु इनके व्यक्तित्व ने बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व को भी प्रभावित किया है। वाराणसी में शिक्षण एवं संपादन-कार्य के दौरान वैसे तो बिस्मिल्लाह जी के अनेक नए मित्र बने थे लेकिन इन मित्रों में से अशफाक साहब से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। इसी तरह दिल्ली के इनके बहुसंख्यक मित्रों में से डॉ॰ चन्द्रदेव यादव की मित्रता अन्यतम किस्म की थी।

डॉ॰ यादव बिस्मिल्लाह जी के साथ ही जामिया मिलिया इस्लामिया में अध्यापन कार्य कर रहे थे। इनसे मित्रता की घनिष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में शोध कार्य करने वाले अनुसंधानार्थियों को इनके बारे में इनसे अधिक डॉ॰ चन्द्रदेव यादव से जानकारी प्राप्त हो जाती है। यादव जी ने अनेक शोधार्थियों को इस संदर्भ में साक्षात्कार भी दिया है। बिस्मिल्लाह जी स्वयं कहते है कि मेरे या मेरे सृजन-कर्म की सम्यक जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले वालों की जिज्ञासा का शमन तथा आकांक्षा की पूर्ति चंद्रदेव यादव ही कर सकते हैं। बिस्मिल्लाह जी

की मित्रमण्डली दरअसल उनकी मानवतावादी दृष्टि तथा स्नेहिल स्वभाव रूपी धागे से बने हुए जाल के समान है। जब तक वे और उनका मित्र परिवार भौतिक रूप से वर्तमान है तब तक इस जाल में लगे किसी भी धागे को किसी भी तरीके से अलग नहीं किया जा सकता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के व्यक्तित्व विषयक विविध आयाम

सामान्य प्रज्ञा का संपोषक साधारण मनुष्य हो या फिर नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञाजन्य विशिष्ट रचना धर्मिता युक्त साहित्य-सर्जन दोनों के व्यक्तित्व निर्माण में उसकी सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक परिस्थितियाँ-प्रवृत्तियाँ आधारशिला का कार्य करती है। दरअसल मनुष्य की बाह्य परिस्थितियाँ वह बुनियाद होती है जिन पर उसके व्यक्तित्व का विशाल प्रासाद सुस्थित होता है। लेकिन ऐसा नही कि मनुष्य की इन परिस्थितियों के अनुरूप ही उसका व्यक्तित्व निर्मित होगा। अधिकांश संदर्भों में मनुष्य की बाह्य परिस्थितियाँ उसकी आंतरिक अभिवृत्तियों से टकराकर अपने से प्रतिकूल प्रकृति का व्यक्तित्व निर्मित करती है। दृष्टांत स्वरूप यदि कोई व्यक्ति परिवार या समाज में आर्थिक रूप से अत्यधिक समृद्ध है तो उसका व्यक्तित्व उदार, सहयोगी, सबका सम्मान करने वाला न होकर ज्यादातर स्वार्थी, महत्वाकांक्षी, अभिमानी एवं शोषक प्रकृति का होगा। इसी तरह जो व्यक्ति अपना परिवार खो चुका हो, जिसका आरम्भिक जीवन अभावग्रस्तता में व्यतीत हुआ हो, जिसने अर्थाभाव में भोजन, वस्त्र, मकान आदि की आवश्यकता से समझौता किया हो, ज्यादातर संदर्भों मे उसका व्यक्तित्व संघर्षशील, कर्मठ, ईमानदार, संवेदनशील भावुक सहयोगी और स्वाभिमानी प्रकृति का ही होगा। अभिकथन का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में उसकी बाह्य परिस्थितियों की प्रभविष्णता प्रतिकूल स्वरूपों वाली ही होती है। जैसा कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के पारिवारिक परिवेश एवं उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि की व्याख्या-विवेचना करते समय उल्लिखित हो चुका है कि इन दोनों संदर्भों में वे अपने यौवनकाल तक अकिंचन ही रहे थे।

माता-पिता के बीच होने वाले झगड़े, मारपीट और विवाह-विच्छेद जैसी घटनाओ ने जहाँ उन्हे माता-पिता के स्नेह दुलार, से वंचित रखा वही चाचा-चाची एवं रिश्तेदारो द्वारा घर से बहिष्कृत कर देने के बाद इनकी बची-खुची पारिवारिक सम्बद्धता भी समाप्त हो गयी। इसी तरह अर्थाभाव दुर्दांत अर्थाभाव से इनका शरीर एवं परछाई का संबंध था इसका भी उल्लेख किया जा चुका है। इन्ही पारिवारिक तथा आर्थिक विषमताओं संबंधी बाह्य परिस्थितियों ने बिस्मिल्लाह जी की अंतर्वृतियों के साथ संघर्ष करते हुए उनके समग्र व्यक्तित्व को निर्धारित सुनिश्चित किया है। यद्यपि इन्होंने अभी तक किसी ऐसे आलेख अथवा आत्मवृत्त की रचना नही की है जिसमें इनके व्यक्तित्व को समग्रता एवं तटस्थता के साथ जाँचा-परखा जा सके लेकिन 'जहरबाद' तथा 'समर शेष है' जैसे आत्मकथात्मक उपन्यासों एवं विभिन्न व्यक्तियों-शोधार्थियों आदि को समय-समय पर दिए साक्षात्कारों से इनके व्यक्तित्व विषयक कुछ प्रवृत्तियों का प्रकटन स्वतःही हो जाता है। जिनके अनुसार गौर वर्ण के दुबले-पतले शरीर वाले बिस्मिल्लाह जी शारीरिक दृष्टि से अत्यंत सक्रिय व्यक्ति है। बढ़ती उम्र के साथ आँखो पर लगने वाले चश्मे का नम्बर भी बढ़ गया है तथा बालों की सफेदी ने सम्पूर्ण सिर को आवृत्त कर रखा है। गर्मियों में कोट-पैंट तथा कुर्ता-पायजामा एवं सर्दियों में सूट पहनना उनकी प्रमुख पोशाक थी। विनोदी स्वभाव के बिस्मिल्लाह जी पान एवं तम्बाकू खाने के शौकीन है। धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक कट्टरता रंचमात्र भी नहीं है, बल्कि ये सभी धर्मो एवं उनके मूलभूत धर्मग्रंथों का समान सम्मान करते हैं। प्रत्येक परिचित-अपरिचित व्यक्ति के साथ आत्मीयता के साथ व्यवहार करना इनके व्यक्तित्व को उदारता और संवेदनशीलता से परिपूर्ण कर देता है।

बिस्मिल्लाह जी में कर्मण्यता एवं संवेदनशीलता का भाव ठूस-ठुसकर भरा हुआ था। जैसी उनकी पारिवारिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि थी उसमे जीवन में मे आगे बढ़ने या एक सम्मानित जीवन जीने के लिए निरंतर कर्मशील रहना ही उनके पास एकमात्र विकल्प का था। बचपन में पिता के कार्यों में सहयोग, सगे-संबंधियों के यहाँ कार्य करना आजीविका के

लिख सदैव नौकरी की तलाश मे रहना, अध्यापन एवं संपादन कार्य करना, अध्यापकीय वृत्ति का निवर्हन करते हुए भी साहित्य सृजन में तल्लीन रहना तथा हिन्दी भाषा व साहित्य और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु धरती के कोने-कोने की यात्रा करना आदि घटना-वृत्तांत उनकी कर्मशील प्रवृत्ति के ही बोधक है। यह कर्मशीलता उनकी संघर्षशीलता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कही जा सकती है। क्योंकि बिस्मिल्लाह जी के कर्म और संघर्ष दोनो में परस्पर अनुपूरक सम्बंध रहा है। जहाँ अपनी विखण्डित पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा दयनीय आर्थिक स्थिति से संघर्ष करने के लिए हड्डिया एकत्रित करने, चमड़े पर नमक लगाने, मजदूरी करने बीड़ी बनाने, साईकिलो की मरम्मत करने, बकरियाँ चराने, जंगल से लकड़ी और पानी लाने आदि का कार्य करना पड़ा वही अपनी बाल आवश्यकताओं अभिलाषाओं तथा भावानुभावों आदि को शामिल रखते हुए विषय से विषमतर परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए भी निरंतर क्रियाशील रहना पड़ा। अनाथ हो जाने के बाद तो इनका संघर्ष और बढ़ गया क्योंकि माता-पिता के न रहने पर परिवार तथा रिश्ते-नाते के लोग ही इनकी उपेक्षा व शोषण करने करने लगे। केवल रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा और शिक्षा के लिए ही नहीं अपितु जीवन जीने के लिए श्री बिस्मिल्लाह जी ने कठोर संघर्ष किया है। आज जिन्हें संविधान प्रदत्त जीवन के मूलभूत अधिकार या आवश्यकताए कहा जाता है भारतीय गणतंत्र की स्थापन में व्यतीत हुए अपने आरम्भिक जीवन में, उनकी प्राप्ति के लिए उन्हें पाषाणी संघर्ष-साधना करनी पड़ी है। ऐसा नही है कि यह संघर्ष केवल जीवन के प्राथमिक सोपान या नौकरी मिलने से पूर्व तक ही जारी रहा है, बल्कि वह वर्तमान में भी अपने बदले स्वरूप में जारी है और इसकी सार्वकालिक उपस्थिति क्रियाशीलता अथवा जीवन की सक्रियता के लिए आवश्यक भी है। इनका स्वयं भी मानना है कि जीवन की निरंतरता या गतिशीलता को बनाए रखने के लिए मनुष्य जीवन में कठिन संघर्षो का बने रहना बहुत आवश्यक है। बिस्मिल्लाह जी अपने व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ

साहित्सिक जीवन में भी संघर्षशील दिखाई देते है। उनकी सर्जनाओं के अधिकांश पात्र जीवन की विषय परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए ही आगे बढ़ते हुए परिलक्षित होते हैं।

संघर्षशीलता की तरह ही संवेदनशीलता और भावुकता भी बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व की प्रमुख भावानुभाविक विशेषताएँ है। उनकी संवेदनशीलता धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक समन्वय के रूप अपने आस-पास के सभी जाति-धर्म के लोगों से सम्बद्ध है। समाज में शोषित, पीड़ित, दलित, वंचित वर्ग के प्रति बिस्मिल्लाह जी की संवेदनशीलता केवल सहानुभूति प्रकटन के स्तर तक ही नही थी अपितु यथावसर यथा-सामर्थ वे इस वर्ग की सहायता भी करते रहे हैं। इनकी यह संवेदना व्यावहारिक जीवन की भाँति ही साहसिक जीवन में भी प्रकीर्णित दिखाई देती है। इन्होने अपनी अधिसंख्य सर्जनाओं में समाज के शोषित-वंचित वर्ग की व्यथा-कथा को कथात्मक अभिधान प्रदान किया है।

इनका उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' की बुनकर समाज की महागाथा होने के साथ-साथ संवेदनात्मक अभिव्यक्ति का सागर भी है। विवेच्य उपन्यास में ये न केवल शोषित-पीड़ित बुनकर समाज के लोगों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील रहे हैं अपितु उनकी दयनीय जीवन-स्थितियों में शीघ्र ही सुधार के लिए भी आस्थावान और आशावान रहे है। अध्यापन के लिए अपने दस साल वाराणसी प्रवास के दौरान वस्त्र बुनकर अपना एवं अपने परिवार का जीवन-यापन करने वाले बनकर समाज की जिन मर्मांतक सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से इनका साक्षात्कार हुआ था उनकी दुर्दांतता ने बनारस एवं उसके आस-पास रहने वाले बुनकर समाज के लोगों के प्रति इन्हें आजन्म संवेदनशील बनाए रखा है। यही संवेदनात्मकता 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। उन्ही के शब्दों में "मै बनारस के जिस मोहल्ले में रहता था वह मोहल्ला बुनकरों का था। वहाँ मै दस साल से भी अधिक समय तक रहा हूँ। मैं उस मोहल्ले में उसी परिस्थिति में रहता था तो स्वाभाविक है कि मेरे मन-मस्तिष्क में उनके प्रति करुण भावों का निर्माण हुआ

और मैंने उन्हें अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में चित्रित किया।" इसी तरह भावुकता भी बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है जिसका उनमे अंतर्वेशन बाल्यकाल की विषम परिस्थितियों में ही हो गया था। आरम्भ में जब माता-पिता के बीच लड़ाई या मारपीट होती थी तब ये भावुक होकर रोने लगते थे। कभी भोजन और वस्त्र के अभाव से, कभी बाल-सुलभ खेल-कूद की चेष्टाओ के पुरा न होने पर तो कभी-कभी पिता एवं रिश्तेदारी द्वारा अधिक काम करवाने से ये भावुक हो जाते थे। माता-पिता की अनुपस्थिति में इनकी यह भावुकता और भी बढ़ गयी। ऐसा नही है कि भावुकता केवल उनके बाल्यकाल से ही सरोकार रखती है, बल्कि यह अभी भी उनमें सहजता से विद्यमान देखी जा सकती है। इनके विश्वविद्यालयी सहचर डॉ° चंद्रदेव यादव के अनुसार "बिस्मिल्लाह जी अत्यंत भावुक है। उनकी यह भावुकता कब उजागर हो जाएगी कुछ कहा नहीं जा सकता। मैने अमृतलाल नागर जी के देहांत पर उन्हें रोते हुए देखा है। उनके प्रिय करीब के व्यक्तियों के निधन पर ही नहीं तो अन्य प्रसंगो पर भी मैंने उन्हें रोते हुए देखा है। उनकी कविता 'घर की चिट्ठी' का पाठ करते हुए वे अपने को रोक नहीं पाते हैं और रो पड़ते है। जिस तरह से बिस्मिल्लाह जी का छात्र-व्यक्तित्व मेधावी एवं बौद्धिक कुशाग्रता से संपन्न रहा है ठीक उसी तरह से उनका अध्यापकीय व्यक्तित्व ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ और साहित्यकार व्यक्तित्व विशिष्ट रचनाधर्मिता का पोषक-संरक्षक रहा है। जिसके आधार पर ही अगणित विधीय महत्व की सर्जनाएँ। साहित्य-कोष को अर्पित करने में सफल रहे। यद्यपि इनकी आरम्भिक शिक्षा में निरंतरता नहीं रह सकी थी लेकिन दृढ़ता एवं शिक्षा के प्रति इनके अनन्य समर्पण ने इस अवधानता का शिक्षा और ज्ञान पर कभी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ने दिया।

अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता के आधार पर ही ये इंटर कॉलेज के प्रधानाध्यापक का पितृवत स्नेह तथा सहयोग प्राप्त करने में सफल रहे थे। साहित्य-सृजन के समकालीन या जनवादी परिवेश में इनकी सृजनशीलता की अनन्यता का अनुमान केवल इसी से लगाया जा

सकता है कि समकालीन दौर के अनेक रचनाकार इनकी रचनाधर्मिता को अपने लिए उपजीव्य मानते है। केवल लेखकों के लिए ही नहीं अपितु वर्तमान पीढ़ी के नवयुवकों के लिए भी बिस्मिल्लाह जी का व्यक्तित्व प्रेरणादायी बन चुका है। जिन विषमतम परिस्थितियों से कठोर संघर्ष करते हुए वर्तमान ख्यातिलब्धता तक ये पहुँचे है उससे सीख लेकर आज की जेनेरेशन स्वयं को उर्जस्वित अनुभूत करती है। बलापुर जैसे अति पिछड़े गाँव के एक विपन्न परिवार में जन्मे एक सामान्य से बालक अब्दुल बिस्मिल्लाह को बहुआयामी व्यक्तित्व का साहित्यकार बनाने में इनकी स्वाभिमानी प्रवृत्ति का विशेष योगदान रहा है। इनकी स्वाभिमानिता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि कठिन परिस्थितियों में संघर्षरत रहते हुए भी इन्होंने आजीवन किसी के आगे मदद के लिए हाथ नही फैलाया। अन्न एवं वस्त्र की समस्या पूरे बाल्यकाल में रही लेकिन इसके लिए किसी से अनुदान लेना आत्माभिमान के नितांत विरुद्ध था। चाचा-चाची और अन्य रिश्तेदार खाने-पीने व कपड़े देकर इनकी जो सहायता किया करते थे उसके बदले इनसे हाड़-तोड़ मेहनत भी करवाते थे। इसी तरह पढ़ाई और व्यवसाय में सहयोग के लिए जब पिता-पुत्र में स्वाभिमान की लड़ाई छिड़ी तब इन्होंने अपने स्वभिमान की रक्षा करते हुए पढ़ाई के साथ-साथ कार्य करने का विकल्प चुना। बाल्यावस्था की यही स्वाभिमानी प्रवृत्ति अध्यापन तथा लेखन काल में भी वर्तमान रही। यहाँ भी इन्होंने किसी भी मूल्य पर कभी भी अपने ज़मीर से समझौता नहीं किया।

बिस्मिल्लाह जी घुमक्कड़ी प्रकृति के भी है। इनकी यह प्रवृत्ति आर्थिक विषमताओं और अध्यापन-लेखन कार्यों द्वारा प्रादुर्भूत-विकसित हुई। बाल्यकाल में पिता के कार्यों में सहयोग एवं अन्न-वस्त्र की प्राप्ति आदि कारणों से इन्हें इलाहाबाद से लेकर मण्डला तक भटकना पड़ा था। इसके बाद अनाथ होने के बाद आश्रय हीनता और शिक्षा आदि कारणों से ये इधर-उधर भटकते रहे। आर्थिक समस्याओं के निदानार्थ नौकरियों की तलाश में भी इन्हें इधर से उधर आना-जाना पड़ता। विभिन्न कारणों से आरम्भिक जीवन में आए इस भटकाव ने बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व को ही घुमक्कड़ी बना दिया। जामिया मिलिया

इस्लामिया विश्वविद्यालय में दीर्घकालीन अध्यापन कार्य करने से इनकी ख्यातिलब्धत्ता में पर्याप्त वृद्धि हुई। प्रध्यापकीय कार्य के समानांतर ही इनका साहित्य-सृजन-कर्म भी गतिमान रहा जिसके कारण इनकी ख्याति अपने उत्कर्ष को पहुँच गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांतो और केंद्र की सरकारों ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न देशो की यात्राओं पर भेजना आरम्भ किया। ट्यूनीशिया एवं सोवियत संघ की यात्रा इसी उद्देश्य का परिणाम थी। वार्सा विशश्वद्यालय में अपने दो साल के अध्यापन के दौरान भी इन्हें योरप तथा एशिया महाद्वीप के पूर्वी देशों की यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। इसी तरह से साहित्य-सृजन संपादन और प्रकाशन संबंधी कार्यों के लिए भी देश-देशांतर के कोने-कोने तक भ्रमण करना पड़ा। यद्यपि ये यात्राएँ विभिन्न उद्देश्यों से की गयी लेकिन इनसे बिस्मिल्लाह जी में देशाटन की प्रवृत्ति पनपी और यह आज भी उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता बनी हुई है। क्योंकि विभिन्न कार्यो से बिस्मिल्लाह जी को समय-समय पर भिन्न देशों की यात्राएँ करनी पड़ती है। इसलिए उनका विदेशी संस्कृति, विशेषतःपाश्चात्य संस्कृष्टि से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। इन यात्राओं से केवल इनका जीवनानुभव ही विकसित नहीं हुआ है बल्कि ये जिस देश की यात्रा पर गए वहाँ के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि से अनिवार्यतः प्रभावित हुए। यद्यपि पाश्चात्य संस्कृति के खुलेपन ने बिस्मित्लाह जी को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित किया है, लेकिन वे न तो कभी पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण किए और न ही अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता एवं महत्ता की कभी उपेक्षा ही की। दरअसल पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर भी वे एक तरह से उससे अप्रभावित रहे हैं। फोन एवं वाहन दोनों का प्रयोग अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर ही किया करते हैं। बस की यात्रा भी इन्हें नागवार लगती है। व्यावहारिक जीवन हो या फिर साहित्यिक जीवन भारतीय संस्कृति अपनी सम्पूर्ण विविधताओं के साथ बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से अभिव्यक्त होती दिखाई देती है।

डॉ. वसीम मकानी द्वारा लिए गए साक्षात्कार में बिस्मिल्लाह जी ने बताया कि उन्हें फिल्म अथवा चलचित्र इस लिए अरुचिकर लगते है, क्योंकि इनमें वास्तविकताओं को छिपाकर मनोरंजन को अधिक महत्त्व दिया गया होता है। फिल्मे मनोरंजन प्रधान होने के साथ कल्पनाओं से परिपूर्ण एवं सुखांत प्रकृति की ही होती है जिनसे जीवन की कोई संगति नहीं बैठती है। यथार्थवादी प्रकृति के बिस्मिल्लाह जी इन्ही काल्पनिकताओ अथवा अयथार्थताओं की संयोजक होने के कारण फिल्मी दुनिया से विरक्ति रखते है। इसी तरह दयालुता बिस्मिल्लाह जी के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग प्रतीत होती है। उनकी दयालुता केवल मनुष्य तक ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवधारियों तक प्रकीर्णित है। ये अपने सगे-संबंधियो के सुख-दुख: में हमेशा सहयोग करते रहे है। दरअसल जो व्यक्ति अपने जीवन में कठिन परिस्थियों का सामना कर चुका होता है वह दूसरों की विषम परिस्थितियों को केवल समझता ही नहीं बल्कि उससे उत्पन्न कठिनाइयों-दुश्चिंताओं आदि को अनुभूत भी करता है। बिस्मिल्लाह जी अपने यौवनकाल तक स्वयं विषय परिस्थितियों से जूझते रहे थे लेकिन नौकरी प्राप्ति एवं लेखन-कार्य के प्रकर्ष पर पहुँचने के बाद से जबसे इनकी परिस्थितियाँ परिवर्तित हुई है तब से ये अपने जानने-पहचानने वाले से लेकर अनजान जरूरतमंदों की यथा सामर्थ्य सहायता करते हैं। जो व्यक्ति इनसे किसी भी तरह से संबंधित है उसके सुख और दुख्ख में ये सबसे पहले पहुँचते है। इनकी यह सहयोगी प्रवृत्ति केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों के लिए भी है। स्वार्थवादिता, स्वेच्छाचारिता, अत्याचारिता आदि संदर्भों में बिस्मिल्लाह जी मनुष्येत्तर प्राणियों को मनुष्यों से भी श्रेष्ठ मानते है। इनकी दृष्टि में मनुष्य स्वार्थी होता है तथा वह अपनी छोटी से छोटी आवश्यकता, महत्वाकांक्षा आदि के लिए आपस में लड़ता ही है, अपने मनोरंजन के लिए पशुओ को भी लड़वाता है। अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए जीवो की हत्या करने वाला मनुष्य अत्याचारी होता है। वह अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तो करता ही है, साथ ही स्वयं को भी जाति, वर्ण, रूप-रंग आदि की दृष्टि से विभक्त रखता है। क्योंकि मनुष्येत्तर प्राणियों में ये प्रवृत्तियाँ ही

पायी जाती हैं इसलिए ये बिस्मिल्लाह जी की दृष्टि में मनुष्यों से भी श्रेष्ठ होते हैं। इस तरह से कह सकते हैं कि मनुष्य की मनुष्यता की अपेक्षा दूसरे जीवधारियों की मनुष्यता अर्थात् पशुओं की पशुता बिस्मिल्लाह जी की दृष्टि में अधिक मानवीय प्रकृति की होती है।

उच्च शिक्षित होने तथा अध्यापन एवं लेखन जैसे अभिव्यापक लोक कल्याणकारी कार्य के कर्ता होने के कारण बिस्मिल्लाह जी प्रगतिशील विचारधारा का संपोषक-संरक्षक होना अस्वाभाविक नहीं है। इनके अध्यापकीय, साहित्यिक एवं व्यावहारिक आदि सभी जीवन क्षेत्रों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रूढ़िवादिता अथवा परम्परावादिता इनके व्यक्तित्व को छूने तक नहीं पायी है। इनकी प्रगतिशील विचारधारा का दर्शन, हमे इनकी कहानियों, उपन्यासों में कल्पित पात्रों एवं उनकी चारित्रिक विशेषताओं तथा अपनी संतानों के पालन-पोषण या संभरण में सम्यक रूप से हो जाता है। बिस्मिल्लाह जी सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों आदि से सदैव दूरी बनाकर चलते रहे हैं। अपनी संतानों को भी इन्होंने रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, परम्पराओं के अनुपालन तथा पाश्चात्य संस्कृति एवं विचारों के अनुकरण की स्वच्छंदता दे रखी है। इसी तरह बिस्मिल्लाह जी का साहित्यिक व्यावहारिक दर्शन मानवतावादी विचारों से प्रेरित-प्रभावित रहा है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप जैसे ये अपने व्यावहारिक जीवन में शोषितों, वंचितों, पीड़ितों आदि की सहायता एवं समर्थन करते रहे है ठीक उसी तरह से अपनी साहित्यिक सर्जनाओं में भी इन्होंने समाज के शोषित पीड़ित और वंचित वर्ग को विशेष कथानकीय महत्ता प्रदान की है। इन्होंने काशीनाथ सिंह के साथ नक्सलवाडी आन्दोलन का समर्थन किया। इस आन्दोलन का बिस्मिल्लाह जी के साहित्यिक जीवन पर विशेष प्रभाव रहा है। इसी तरह ये अपने अध्यापन एवं लेखन क्षेत्र में, अन्याय और शोषण के खिलाफ चलने वाले सभी आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाते रहे है। उत्तर-प्रदेश शिक्षक संघ के आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने के कारण इन्हे अल्पावधिक कारावास की सजा हुई थी।

सामान्य प्रतिभा का हो या फिर विशिष्ट रचनाधर्मिता का प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व एवं उसका विचारादि किसी विशेष व्यक्ति के व्यक्तित्व और विचार से प्रेरित-प्रभावित अवश्य होता है। बिस्मिल्लाह जी भी विभिन्न पृष्ठभूमियों से अंतर्संबंधित अनेक व्यक्तियों के विचारों-व्यवहारों से प्रेरित-प्रभावित थे। महात्मा गाँधी जहा इनके सामाजिक-राजनीतिक आदर्श हैं वही प्रेमचंद जी की वैचारिकता उनके साहित्यिक दर्शन का आधार है, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। एक तरफ अपने व्यावहारिक जीवन में जहाँ ये गाँधीवाद के प्रमुख सिंद्धातों सत्य, अहिंसा, कर्तव्यनिष्ठा आदि के उपासक रहे है वही दूसरी तरफ प्रेमचंद जी का यथार्थवाद अपने नवीन स्वरुप में इनका साहित्यिक दर्शन रहा है। इसी तरह प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत एवं कवयित्री महादेवी वर्मा, समालोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी, एकांकीकार रामकुमार वर्मा, उपन्यासकार यशपाल, जीवनीकार अमृतलाल नागर, कथाकार अमरकांत कवि व समालोचक काशीनाथ सिंह, नामवर सिंह एवं इतिहासकार डॉ. बच्चन सिंह आदि साहित्यिक पृष्ठभूमि के व्यक्तियों ने अपने कार्यों एवं विचारों आदि से बिस्मिल्लाह जी विशेष रूप से प्रभावित थे। अपने साक्षात्कार में इन्होने डॉ० वसीम मकानी से बताया है कि ये यशपाल जी से एक ही बार मिले है जबकि अमरकांत के साथ इनका लम्बा समय व्यतीत हुआ है। इन्हीं के प्रेरणा से इनका साहित्यावतरण हुआ क्योंकि अमरकांत जी ने ही इन्हें माया प्रेस में नौकरी करने से रोक दिया था। यदि ये प्रेस की नौकरी कर रहे होते तो समकालीन हिन्दी साहित्य-संसार को शायद ही अपनी अमूल्य सर्जनाएँ दे पाते। यही नहीं अमरकांत जी ने ही बिस्मिल्लाह जी की एक रचना को पहली बार राजकमल प्रकाशन जैसे नामचीन प्रकाशन संस्थान में प्रकाशित करवाने में मदद की थी जिसके बाद ही इनका सर्जनात्मक उत्साह अपने उत्कर्ष की ओर उन्मुख हुआ।

अमरकांत जी के इस सहयोग और व्यवहार से बिस्मिल्लाह जी बहुत प्रभावित रहे हैं। इसी तरह ये नामवर सिंह जी और उनके भाई काशीनाथ सिंह तथा इतिहासकार बच्चन सिंह जी के सहयोगी व्यक्तित्व से भी थे बहुत प्रभावित दिखाई देते हैं। अनेक अवसरों पर विभिन्न

कार्यक्रमों में इन तीनों के साथ ही ये भी व्याख्यान देने जाया करते थे। नामवर सिंह जी के प्रति उनकी विशेष अनुरक्ति है क्योकि उन्होने ही जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वावद्यालय में अध्यापन कार्य की नियुक्ति हेतु इनकी सिफारिश की थी। यही नही बिस्मिल्लाह जी किरायेदार के रूप में नामवर सिंह जी के यहाँ कई वर्ष व्यतीत किए हैं। उन्ही के शब्दी में - "जामिया मिलिया मे मेरी अपॉइंटमेंट उन्ही के कारण हुई है। उन्हीं की बदौलत मैं दिल्ली में रहा हूँ। उनके मकान में मैने कई साल गुजारे है।"

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह जी व्यक्तित्व विविध आयामी रहा है। इस आयामगत विविधता निर्माण में उनकी आंतरिक वृत्तियों की समतुल्यता में सामाजिक पारिवारिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों की महत्ता अवर्णनीय महत्ता रहा है आंतरिक-वृत्तियों तथा बाह्य परिस्थितियों की टकराहट से ही कर्तव्यता, संवेदनशीलता, भावुकता, दयालुता, आत्माभिमानिता, प्रगतिशीलता तथा सहिष्णुता आदि घटक इनके व्यक्तित्व में अंतर्भुक्त होकर इसे विलक्षण एवं आगामी पीढ़ी के नैनिहालो-नवयुवको के लिए उपजीव्य बनाते है।

1.2 साहित्यिक अवदान का अनुशीलन

व्यक्तिगत व्यावहारिक जीवन के कठोर संघर्षो की भाँति ही बिस्मिल्लाह जी का साहित्यिक देशाटन भी अगणित बाह्य व्यवधानों और अवरोधो से कभी टकराता तो कभी उन्हें विजित करता या फिर कभी उनकी उपेक्षा करता गतिमान रहा है। स्वाभिमानी प्रवृत्ति, कर्मशील एवं निडर स्वभाव, अंतर्मन से संकोची, अंतस्थल से संवेदनशील, भावुक और दयालु वृत्ति रखने वाले बिस्मिल्लाह जी अपने समग्र रचना-कर्म में आद्यंत शोषकों, दमनकर्ताओं तथा उत्पीड़को से लड़ते और उन्हें लताड़ते एवं शोषितों, पीड़ितों, वंचितों अभावग्रस्तों आदि के अधिकारों का संरक्षण करते हुए, उन्हे उत्पीड़न-दमन से मुक्त करके न्याय दिलाते हुए समकालीन कथा-साहित्य में अत्याधुनिक मानवाधिकारों एवं मानव-मूल्यों

की स्थापना में अग्रगामी दिखाई देते है। इसी तरह अन्याय, अनाचार, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड आदि सामाजिक-वैचारिक कुप्रवृत्तियों, कुप्रथाओं की शमनक वैचारिकी से युक्त बिस्मिल्लाह जी जीवनानुभव, भोगा हुआ यथार्थ तथा उनके देशकाल और वातावरण की परिस्थितियाँ-प्रवृत्तियाँ अथवा चित्तवृत्तियाँ आदि ही उनकी रचनाओं में उत्कीर्णित-प्रकीर्णित हुई हैं। यदि साहित्य को स्वानुभूति की अभिव्यक्ति और जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब वाले सिद्धांत से सम्बद्ध करते हुए उसके भौतिक अस्तित्व की कल्पना की जाय तो यह कहना रंचमात्र भी अतिरेकी नहीं होगा कि बिस्मिल्लाह जी का साहित्य-कर्म उनके देशकाल एवं वातावरण की परिस्थितियों तथा जनता की चित्तवृत्तियों तथा उन परिस्थितियों में भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति से पृथक कुछ भी नहीं है। एक साहित्यिक सर्जक के रूप मे इनका साहित्यिक अवदान अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन आदि के प्रतिरोध में लड़ने की, संघर्षो के साथ अदम्य जीवंतता की दीर्घकालिक यात्रा है। बिस्मिल्लाह जी की यथार्थवादी तथा सार्वकालिक प्रासंगिकता वाली साहित्यिक प्रवृत्ति के निर्माण में इनकी जीवनानुभूतियों एवं अनुभवों की आधारिक भूमिका रही है। दरअसल ये नयी पीढ़ी के उन गिने-चुने लेखकों में से है जिनके लिए जीवन जीना और साहित्य-लिखना एक ही अर्थवत्ता के विषय हैं। वर्तमान पीढ़ी के बहुचर्चित कवि, कथाकार, महान नाटककार एवं विमर्शकार बिस्मिल्लाह जी की सृजनशीलता भी उनके व्यक्तित्व की भाँति ही बहुआयामी प्रकृति की है। दरअसल "उन्होंने अपनी कलम चलाते वक्त झीनी-झीनी बातों को भी रेखांकित किया है। उनके लेखन में जो अभावग्रस्त लोग नज़र आते हैं, वे उनके आस-पास के परिवेश की देन है। उनके साहित्य में हमें कल्पना से अधिक यथार्थता दृष्टिगत होती है। उनके साहित्य में आशा की किरण मिलती है। उन्होने अपना साहित्य-लेखन कविता से शुरू किया है। बाद में उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्य का सृजन किया है।" मध्यम और निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज के जीवन तथा साहित्य के बीच जितनी अधिक घनिष्ठ संपृक्तता बिस्मिल्लाह जी के यहाँ मिलती है उतनी अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बीच अधिष्ठित

यह अद्भूत समन्वय और सामंजस्य एक तरह से साहित्येतिहास को चिढ़ाता सा है और इसके निर्माण में इनकी पारिवारिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की दुर्दांतता के साथ-साथ अध्ययनजन्य सहजा एवं उत्पाद्या प्रतिभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही कारण है कि अपने रचनाकर्म में अपने भोगे एवं अनुभूत यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ स्वयं के अनुसंधान में भी तत्पर दिखाई देते हैं।

यद्यपि बिस्मिल्लाह जी का व्यवस्थित साहित्यावतरण सन् 1977 ई॰ में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'मुझे बोलने दो' से माना जाता है लेकिन लेखन के प्रति इनकी अभिरुचि बचपन से ही अति उत्साही प्रकृति की थी। जैसे दुकानों से लाए निरर्थक लिफाफों को ये पढ़ा करते थे वैसे ही कलम और सादा का कागज मिल जाने मात्र से ही कुछ न कुछ लिखने में भी व्यस्त हो जाते थे। माना जाता है कि इन्होंने कविता और कहानी दोनों विधाओं में लेखन का आरम्भ समान समयावधि में किया जिसमे 'खोटा सिक्का' शीर्षक कहानी को इनकी प्रथम कहानी होने का गौरव प्राप्त है। इस कहानी को लिखने के समय बिस्मिल्लाह जी हाईस्कूल की पढ़ाई मिर्जापुर से कर रहे थे। ध्यातव्य है कि इससे कुछ समय पूर्व ही ये मध्य प्रदेश में थे तब वहाँ की प्राकृतिक रमणीयता से प्रभावित होकर 'हरियाली' शीर्षक कविता की रचना की थी। भाषा एवं भावबोध दोनों दृष्टियों से इनकी ये दोनो रचनाए इनकी साहित्यिक यात्रा के प्राथमिक सोपान की प्रतीत होती हैं। इसी तरह इण्टरमीडिएट की पढ़ाई के दौरान इनमें रतिभाव भी प्रस्फुटित हुआ था, परिणामस्वरूप श्रृंगारिक प्रकृति की कुछ कविताएँ उस समय अस्तित्व में आयी थी। कालांतर में इन्होंने इन कविताओं की भाषा-शिल्प एवं भाव आदि में पर्याप्त संशोधन-परिवर्तन किया। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'भारत' में कॉपी होल्डिंग करते हुए तथा 'मित्र' एवं 'माया' के उपसंपादक और 'कदम' के संपादक पद पर आसीन रहते हुए भी इनकी विभिन्न विधागत कुछ आरम्भिक रचनाए इन पत्रो-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। उपर्युक्त छिटपुट लेखनो-प्रकाशनो ने बिस्मिल्लाह जी की साहित्यक मनोभूमि के निर्माण अथवा उनके सुदीर्घ देशाटन की

पूर्वपीठिका का निर्माण कर दिया था। आरम्भिक सोपान पर निर्मित इस मार्ग पर बिस्मिल्लाह जी ने वाराणसी प्रवास के दौरान ही चलना प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप सन् 1977 ई° में इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'मुझे बोलने दो' प्रकाशित हुआ। साहित्य-सृजन की अपनी सुदीर्घ यात्रा के लिए एक बार मार्ग प्रस्तवण कर लेने के उपरांत फिर से इन्होने कभी पीछे मड़कर नहीं देखा जिसके कारण तब से लेकर आज तक उनकी यह रचनात्मक यात्रा अबाध गति से गतिशील है। हिंदी के अतिरिक्त उर्दू और संस्कृत के अध्यापक रहे बिस्मिल्लाह जी की लेखनी ने साहित्य की अधिकांश आधुनिक विधाओ की सेवा-शुश्रुवा की है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना तथा संपादन-कार्य आदि विधाओं से संदर्भित असंख्य अमूल्य धरोहरे साहित्यिक अवदान स्वरूप हिन्दी साहित्य के अधिकोष प्रदान की गयी है।

सन् 1981 ई° में इनका प्रथम कहानी संग्रह 'टूटा हुआ पंख' प्रकाशित हुआ जिससे गद्य-साहित्य के अन्तर्गत इनका व्यवस्थित अवगाहन माना जाता है तथा जो सन् 1986 ई° में प्रकाशित उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' तक पहुँचकर अपनी पूर्णता एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है। इन रचनाओं के प्रकाशनोपरांत बिस्मिल्लाह जी एक समादृत साहित्य-सर्जक एवं समकालीन कथाकार की पदवी प्राप्त कर लेते है और इसके बाद इनका लेखन-कर्म विविध आयामी होकर गद्य और पद्य दोनों मे समानांतर गतिशील हो जाता है। इसी अनुक्रम में ये नाटक, आलोचना सम्पादन-कार्य तथा अनुवाद संबंधी सर्जनाओं के माध्यम से वह समकालीन साहित्य की समृद्धि करने में करने अनन्य योगदान देने मे सफल रहे हैं। इनकी प्रत्येक विधागत सर्जनाएँ अब अपनी साहित्यिक-सामाजिक प्रभावोत्पादकता तथा चिरकालीन उपादेयता की दृष्टि से साहित्य की अमूल्य धरोहर है। भले ही साहित्य-संसार इन्हें कथाकार की पदवी से ही अलंकृत करके इसकी रचनाधर्मिता की आयामिक विस्तीर्णता को संकुचित करता रहा हो लेकिन समकालीन सहृदय जिस महत्ता, उपादेयता और प्रभविष्णुता के कारण इनकी कहानियों और उपन्यासों का ऋणी रहेगा उसी

प्रासंगिकता एवं अन्य संदर्भों मे इनके कथेतर गद्य एवं पद्य साहित्य का भी। दरअसल इन सर्जनाओं की चिरकालीन उपादेयता तथा बिस्मिल्लाह जी की कालजयी कीर्ति की स्थापना जिन सर्जनात्मक प्रतिमानों के सम्मिलन से हुई है उसकी आधारशिला उनका सम्पूर्ण साहित्य-कर्म है। अभिकथन की सत्यता की जाँच के लिए बिस्मिल्लाह जी के समस्त साहित्यिक अवदान का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करना अपरिहार्य हो जाता है। इस अनुक्रम में अध्ययन की सुविधा के दृष्टिगत प्रथमतः इनके यहां साहित्य का परिचय प्रस्तुत करने के उपरांत गद्य का संक्षिप्त अवलोकन करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

1.2.1 साहित्य का परिचय

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने यद्यपि अपनी साहित्यिक यात्रा का आरम्भ काव्य लेखन से ही किया था लेकिन इस पर ये थोड़ी दूर ही आगे बढ़े थे कि उनकी यह यात्रा गद्य-लेखन की ओर मुड़ गयी। हालांकि इनका कवि-अंतर्गत इस मार्ग को कभी भी पूरी तरह विस्मृत नहीं किया परंतु गद्य-लेखन की समतुल्यता में बिस्मिल्लाह जी बहुत कम ही इस मार्ग के पथिक बन सके है। अभी तक इनके कुल चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनका परिचयात्मक विवरण अधोलिखित है-

1. मुझे बोलने दो- यह काव्य-संग्रह युगबोध प्रकाशन वाराणसी से सन् 1977 ई° में प्रकाशित हुआ जिसमे एक कविता की भूमिका, लोहे की दीवार, विडम्बना, सब्जी काटने वाला चाकू, बीसवीं शताब्दी तक इतिहास, अवाच्यवाचन, रक्तवाध्य, तूफान का संदर्भ, देश और युग, आदमी का बच्चा, उसका देश, घाव और सूरज, सर्कस के शेर, भेड़िए, मेरा ऊँट, जिन्दगी पर लिखा वक्तव्य, युद्ध, रक्त की पूर्ति, कोई विकल्प नहीं, बकवास बन्द करो, लीथों पर लिखी कविता, सिंह कन्या, इस हिजड़े जमाने मे, पैजामे की महत्ता, मछलियों के बीच तथा एक कविता पत्नी के प्रति आदि शीर्षकों की कुल पैंतीस कविताएँ संकलित है। प्रथम काव्य-संग्रह होने पर भी इसमें संकलित कविताएँ भाषा और भाव की प्रौढ़ता के दृष्टिगत

किसी भी दृष्टि से आरम्भिक रही लगती है। कविताओं की भाषाई सरलता तथा प्रवाहमयता के साथ-साथ इनकी बिम्ब और प्रतीक योजना विशेष रूप से काव्य रसिकों का ध्यान आकर्षित करती है। इन कविताओं में से अधिकांश की भावभूमि तद्‌युगीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक विसंगतियो की अभिव्यक्ति से अंतर्संबंधित है। प्रतीकों के माध्यम से देश की राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य, शोषितों और सर्वहारा वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण तथा आर्थिक, न्यायिक और प्रशासनिक व्यवस्था के बीच पिसने वाली जनता, कृषक, मजदूर एवं दलित वर्ग की पीड़ा संत्रास व वेदना की अनुभूतिजन्य अभिव्यक्ति इन कविताओं की केन्द्रीय प्रवृत्ति रही है।

2. छोटे बुटों का बयान- बिस्मिल्लाह जी का दूसरा काव्य-संग्रह 'छोटे बुटो का बयान' शीर्षक से सन् 1982 ई° में संभावना प्रकाशन हापुड़ से प्रकाशित हुआ। इकतालीस कविताओं के इस संग्रह में शाम होने से पहले, मेरी चिड़िया, बीर बहूती, वो और उनके बच्चे, मेरी कविता, हवा, भूगोल, बच्चे के प्रति, कांच का खेल, इतिहास, कलजुगी नारायन, कच्ची आँखों का दर्द, क्रांतिदूत, लडाई नन्ही जंजीर, तढ़ा मे ही जानता था, लोहे के खिलाफ, ढोर, चील की बेटी, आग का जंगल, कबूतरी का विलाप, जंगल की आग, शिकारी आएगा, नीला आदेश, पलाश के हत्यारे, वर्ष, वृक्ष, विरोध, नयी सृष्टि का जन्म, पेड़ या आदमी तथा इस समुद्र में आदि नामवाची कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन की बहुसंख्यक कविताओं में अमानवीय प्रवृत्ति पर मानवीय प्रवृत्तियों अर्थात् पशुता पर मनुष्यता का विजयात्मक चित्रण किया है। अमानवीय प्रवृत्तियों के रूप मे जहाँ ये कविताएं शोषित, पीड़ित, वंचित और दलित वर्ग की विषमतर अथवा दुर्दांत परिस्थितियों की अभिव्यंजना करती दिखाई देती है वही मजलूमों की बदतर स्थिति, उनकी बेवशी, लाचारी, हृदयविदारक आर्थिक स्थिति, अमानवीय, क्रुरता, असहायता, निर्ममता और निष्ठुरता आदि का भी नग्न चित्रण करने में प्रतिबद्ध दिखाई देती है। इसी तरह मानवीय प्रवृत्ति के रूप में भावुकता, संवेदनात्मकता,

सहयोगिता, प्रगतिशीलता और अनुभूति की व्यापकता आदि इन कविताओं का केन्द्रीय विषय रहा हैं।

3. वली मुहम्मद और करीमन बी की कविताएँ- सर्वज्ञात है कि वलीमुहम्मद बिस्मिल्लाह जी के पिता का और करीमन बी इनकी माता का नाम था। अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप इन्होने अपने इस तीसरे कविता-संग्रह को उनके ही नाम से प्रकाशित करवाया। पराग प्रकाशन दिल्ली से सन् 1988 ई॰ में प्रकाशित विवेच्य काव्य-संग्रह- दुनिया एक स्लेट है, खुशबू, लड़कियाँ बारात देखती हैं, डलिया भर प्यार, बिटिया रानी, नहान, काले रंग की खेती, घर, घसियारिन और मोर चूजे का जन्म, खेल-खेल में, सुअर चराने वाली लड़की, संस्कार, गोलियाँ लड़की नहा रही है, बाढ़, कागज, उस दिन वली मुहम्मद और करीमन बी की कविताएँ- लोग, समय, कविता लिखने की जरूरत, भोपाली गजरा, दिल्ली तथा पाँच पत्नियों का देश आदि शीर्षक कुल पैंतीस कविताओं का संकलन है। संग्रह का नामकरण इसी नाम की एक कविता के आधार पर किया गया है जो कि हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत भी है। इस संग्रह की कविताओं मे बिस्मिल्लाह जी ने अपने भौगोलिक-सामाजिक परिवेश की जीवनगत संगतियो-विसंगतियों के साथ-गरीबी, भुखमरी, अभावग्रस्तता, अर्थाभाव, सर्वहारा वर्ग की दुश्चिंताओं, मजदूर वर्ग की आर्थिक विद्रूपताओं तथा शोषितों, दलितों और पीड़ितो मन:स्थितियों आदि का भी चित्रण किया है। इनमें से कुछेक कविताओं में कवि ने अपनी व्यक्तिगत पारिवारिक एवं आर्थिक समस्याओं की ओर भी संकेत किया है। वलीमुहम्मद और करीमन बी की कविताएँ शीर्षक कविता के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी अपने माता-पिता की जीवन-शैली, उनकी शारीरिक संरचना, जीवनगत उतार-चढ़ाव तथा उनकी मुफलिसी आदि का अत्यंत ही मनोहर लेकिन मर्मांतक व यथार्थपरक केरीकेचर प्रस्तुत किया है।

4- किसके हाथ गुलेल- बिस्मिल्लाह जी का यह अंतिम काव्य-संग्रह सन् 1990 ई० में संदर्भ प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संकलन में दोहा छन्द में रचित कुल दस कविताएँ- सागर का क्या भेद, गोरी घूमें खेत, चेंगेरवा: यानी प्रशोत्तरी, न तोता न काग, गेहूँ जैसा रूप तुम्हारा, तेरी आँखों के ये जुगनू, ये तो रोग वियोग, पच्छुम डूबे चाँद मन है, लालम लाल और तेरह-इग्यारह संकलित है। वैसे तो दोहा छन्द की परम्परा हिन्दी मे अत्यंत पुरानी है लेकिन फिर भी बिस्मिल्लाह जी की इन कविताओं को पढ़ने के बाद काव्य-रसिकों का अंतर्मन कबीर, बिहारी और रहीम की ओर स्वभावतःचला जाता है। हालांकि इनके ये दोहे काव्यशास्त्रीय विधान के सर्वथा अनुरूप नहीं है लेकिन फिर भी इनकी भावगत सरलता, भाषिक प्रवाहमयता और तुकांतता अनायास ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। इन कविताओं के भाव पक्ष की दृष्टिपात करें तो प्रत्यक्षित होता है कि कवि ने समकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन-क्षेत्र से संबंधित संगतियों-विसंगतियों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति को कविता का विषय बनाया है। इसी अनुक्रम में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रतिरोध, प्रजातंत्रात्मक अथवा संसदीय शासन प्रणाली में अंतर्भुक्त विद्रूपताओं का उत्कीर्णन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य तथा आँचलिक प्रदेश की रमणीयता आदि को इन दोहात्मक कविताओं के माध्यम से चित्रित किया गया है। इसलिए इन कविताओं में धर्म तथा संस्कृति का पवित्र स्थान है तो ग्रामीण परिवेश की साँवली-सलोनी व रूपवती स्त्री का सौदर्य वर्णन है, राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य-प्रहार है तो रोमानियत की अभिव्यक्ति भी है। अपने इस अंतिम काव्य-संग्रह की कविताओं बिस्मिल्लाह जी का कवि व्यक्तित्व आशावादी एवं विद्रोही दोनों स्वरूपों का रहा है। विद्रोह, युगीन परिस्थितियों से है जिसमें भ्रष्ट शासन व्यवस्था अथवा नौकरशाही, लालफीताशाही, सामंतवादी और राजतंत्रात्मक व्यवस्था केन्द्र में रही है। जबकि उनकी आशावादिता शासन की भ्रष्टाचारिता की समाप्ति और वास्तविक

गणतंत्रात्मक की स्थापना के प्रति है। कवि की इस आशावादिता को उसकी अधोलिखित काव्य पंक्तियों में देखा और अनुभूत किया जा सकता है-

"थोड़े दिन की बात है साथी कर ले पिंजरा बांस।।
फिर तो चिड़िया राज करेंगी और बहेलिया दास"

भारतीय गणतंत्र की स्थापना के बाद से यद्यपि मुगलकालीन सामंती और राजतंत्रात्मक व्यवस्था घोषित-सैद्धांतिक रूप से समाप्त हो गयी है लेकिन व्यावहारिक स्तर पर आजादी प्राप्ति के कई दशक व्यतीत हो जाने पर भी यह आज भी किसी न किसी रूप में वर्तमान रहकर गरीबों का शोषण, दमन और उत्पीड़न कर रही है। नव्य स्थापित लोकतंत्र में भी आम जनता सामंतवादी व्यवस्था की भाँति ही शोषित हो रही है। दरअसल इस जनतंत्र की स्थापना की बुनियाद राजतंत्र के खण्डहर पर ही निर्मित हुई है इसलिए शोषण, दमन और उत्पीड़न का स्वरूप भी वही है। इस तथाकथित लोकतन-लोकतंत्रात्मक शासन जनता, जनता के लिए होना चाहिए वहाँ कुछ प्रभुत्व संपन्न लोगो का शासन जनता के लिए लिए है शासन व्यवस्था की आधारशिला व संदर्भ में बिस्मिल्लाह जी लिखते हैं-

"खत्म हो गए सब रजवाड़े सामंती दरबार।
पर इनके ही हाँड-मांस से बनी नई सरकार।"

इसी तरह संग्रह की और कविताएँ भी समकालीन भारत की राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक विसंगतियों को अपने भावपक्ष में पर्याप्त स्थान देती दिखाई देती है।

उपर्युक्त चारों काव्य-संग्रहो के अतिरिक्त काव्य-विधा के अंतर्गत बिस्मिल्लाह जी की प्रकाशित एकमात्र रचना 'कजरी' है। लोककाव्य की श्रेणी में आने वाली लोकगीतों की यह रचना अनंग प्रकाशन दिल्ली से सन् 2000 ई° में प्रकाशित हुई जिसमे पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध लोकगीत कजरी संबंधी गीतो को संकलित किया गया है। दरअसल उत्तर प्रदेश के

अवध क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले पूर्वी जिलों, मसलन- इलाहाबाद, मिर्जापुर, जौनपुर, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, अमेठी, रायबरेली और वाराणसी आदि का प्रसिद्ध लोकगीत कजरी है। मिर्जापुर जनपद से प्रादुर्भूत कजरी वर्षा ऋतु का लोकगीत है जिसे मुख्यत: सावन के महीनों में गाया जाता हैं। कजरी संबंधी गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन, विरह-वर्णन और राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन श्रृंगारिक प्रकृति में किया जाता है। कजरी की साहित्यिक प्रकृति काव्य की होती है तथा इसमें श्रृंगार रसकी प्रधानता होती है। बिस्मिल्लाह जी की 'कजरी' शीर्षक रचना इसी लोकगीत से संबंधित गीतो का संकलन है।

1.2.2- गद्य-साहित्य का अवलोकन

काव्य-लेखन से आरम्भ हुई बिस्मिल्लाह जी की साहित्यिक यात्रा अतिशीघ्र ही गद्य-लेखन की ओर मुड़ गयी और फिर वह अधिकांश इसी मार्ग से होती हुई गतिशील रही। इस अनुक्रम में प्रथमत: उन्होंने कहानी और उपन्यास विधा को अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता के माध्यम से समृद्ध किया, तत्पश्चात नाटक, आलोचना, बाल साहित्य और अनुवाद आदि साहित्यिक विधाओं के परिक्षेत्र की इनकी लेखनी ने संवेदनात्मक स्पर्श प्रदान किया। यद्यपि समकालीन साहित्य में बिस्मिल्लाह जी को जो साहित्यिक अमरता व ख्यातिलब्धता प्राप्त है उसमें उनके कथाकार की अभिधान प्रदायक कहानी और उपन्यास विधा की आधारिक भूमिका रही है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मात्रात्मक एवं परिमाणात्मक दृष्टि से उनकी कथेतर सर्जनाएँ उन्नीस है। बिस्मिल्लाह जी के नाटक और उनकी समालोचनात्मक कृतियाँ भावपक्षीय एवं कलापक्षीय विशिष्टताओं में एतद्विषयक विधाओं की प्रतिमान निर्धारण प्रतीत होती है। इसलिए कहानी और उपन्यास के साथ-साथ उनकी दूसरी अन्य विधागत सर्जनाओं का अध्ययन-अनुशीलन अनिवार्य हो जाता है।

अ. कहानी-संग्रह

1. टूटा हुआ पंख- यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का प्रथम कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन आलेख प्रकाशन नई दिल्ली से सन् 1981 ई° में हुआ। इस संग्रह में क्षयी, कच्ची सड़क, शीरमाल का टुकड़ा, जन्मदिन, तीर्थयात्रा, अपना-अपना अंत, क्रमश; नन्हीं-नन्ही ऑखे, शून्य की ओर, शत्रु, हीरा, थके हुए लोग, पागलों वाली सेल, सीला एवं टूटा हुआ पंख शीर्षक पंद्रह कहानियॉ संग्रहित है। इस संग्रह में संग्रहित अधिकांश कहानियों की सर्जना बिस्मिल्लाह जी ने अपने शिक्षार्जन की समयावधि में की थी। कथावस्तु की दृष्टि से इन कहानियों को पारिवारिक कहानी सामाजिक कहानी और रोमानियत या प्रेम-संबंधो की कहानी आदि वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है। टूटा हुआ पंख और क्षयी शीर्षक कहानी में कहानीकार ने पारिवारिक जीवन में आयी विखण्डन जैसी विसंगति को चित्रित किया है जबकि नन्हीं-नन्ही आँखे, शून्य की ओर तथा अपना-अपना अंत शीर्षक कहानी में प्रेम मार्ग में प्रादुर्भूत होने वाली, अमीरी-गरीबी, जाति-पाति, विजातीय-अंतर्जातीय आदि समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान किया गया है। इसी तरह शीरमल का टुकड़ा, कच्ची सड़क, जन्मदिन, तीर्थयात्रा, थके हुए लोग आदि कहानियों में बिस्मिल्लाह जी ने समकालीन परिवेश की सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को सृजनात्मक आधार प्रदान किया है। सामाजिक भेदभाव आर्थिक विपन्नता, बेरोजगारी, विसंस्कृतिकरण, अकिंचनता, प्रशासनिक अक्षम्यता, सामंतवादी शासन व्यवस्था, व्याथिक विषमता, मानसिक-वैचारिक विचलन आदि संख्यातीत प्रवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक दृष्टिपात करना भी इन कहानियों के उद्देश्यगत केन्द्रक में सम्मिलित रहा है।

2. कितने-कितने सवाल- कुल बारह कहानियों का संकलन यह कहानी संग्रह कालक्रम की दृष्टि से बिस्मिल्लाह जी का दूसरा कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1984 ई° में पराग प्रकाशन दिल्ली से हुआ। कहानी-संग्रह का नामकरण संग्रह में संकलित इसी नाम की एक कहानी के आधार पर किया गया है। मुरीद तलाक के बाद, नया कबीरदास, दरबे के लोग, मुर्दे चेहरो के लिए, फौलाद बनता आदमी, मुक्ति खण्ड-खण्ड आदमी, दण्ड काई,

कितने कितने सवाल और प्रतिद्धन्द्धी नामक कहानियाँ इस संग्रह मे संकलित है। अपने पहले कहानी संग्रह में जहाँ बिस्मिल्लाह जी ने जहाँ प्रेम, परिवार, समाज, राजनीति व प्रशासन आदि को कथावस्तु का स्वरूप प्रदान किया है वहीं इस संग्रह की कहानियों में जीवन के उन विविध पक्षो की संगतियों-विसंगतियों को उजागर किया गया है जिसे सामान्य मनुष्य रोजमर्रा के जीवन में जीता है। 'मुरीद' नामक कहानी में मुस्लिम समाज की संयुक्त परिवार की प्रथा की विशेषताओं के साथ-साथ उसकी आर्थिक विषमताओं को भी उजागर किया गया है जो कि पारिवारिक विघटन का प्रमुख कर कारण बनती है। 'तलाक के बाद' शीर्षक कहानी में मुस्लिम समाज की सर्वाधिक वीभत्स रीति हलाला की अनैतिकताओं, अमानवीयताओं आदि का चित्रण किया गया है। अपना प्रगतिशील दृष्टिकोण स्वत: प्रदर्शित करते हुए कहानीकार इस कहानी में मुस्लिम समाज की सामाजिक-धार्मिक रूढ़िवादिता पर कुठाराघात किया है। इसी तरह कबीरदास ने सामाजिक समन्वय साधने का प्रयत्न किया गया है जबकि 'काई' में पारिवारिक संबंधों में बढ़ती स्वार्थवादिता को उजागर किया गया है। 'कितने-कितने सवाल' कहानी माता-पिता द्वारा अपनी पुत्रियों के साथ किए गए भेदभाव को प्रदर्शित करती है जबकि 'प्रतिद्वंदी' कहानी पारिवारिक संबंधों में आए परिवर्तन को उजागर करती है। केवल भावपक्ष ही नहीं अपितु कलापक्ष अर्थात् शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से भी इस संग्रह की कहानियाँ अधिक परिपक्व और अनुपम किस्म की है। कथ्य एवं शिल्प का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करने वाली इन कहानियों की भाषा तथा शैली का अद्भुत स्वरूप भी देखने को मिलता है जिसके आधार पर बिस्मिल्लाह जी एक प्रतिष्ठित कहानीकार बन जाते हैं।

1.3. रैन बसेरा- बिस्मिल्लाह जी का तीसरा कहानी संग्रह 'रैन बसेरा' शीर्षक से सन् 1989 ई॰ में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ जिसमें पागल राजा, दूसरे मोर्चे पर, विदूषक, भूत, दंगाई कागज के कारतूस, लफंगा, खुशी, पूर्व, पुरानी हवेली बैरंग चिट्ठी, रैन बसेरा तथा ज्ञानमार्गी शीर्षक कुल चौदह कहानियाँ संकलित है। इस संकलन की कहानियों

में विभिन्न जीवन-क्षेत्रों में प्राप्त विद्रूपताओं की ओर संकेत अथवा उन पर व्यंग्य दृष्टिगोचर होता है। 'खिलाड़ी' नामक कहानी में जहाँ भारतीय शिक्षा प्रणाली में अंतर्भुक्त वीभत्स विसंगतियों मसल-उच्च शिक्षकों की नियुक्ति संबंधी भ्रष्टाचार, भेदभाव, फीस वृद्धि, वेतन की समस्या आदि को उजागर किया गया है वही। 'कागज के कारतूस' कहानी में सामाजिक शोषण, दमन, उत्पीड़न आदि को दिखाया गया है। इसी कहानी में अभावग्रस्तता, बेरोजगारी, दहेज प्रथा जैसी कुरीति आदि का भी चित्रण किया गया है। इसी तरह के बैरंग चिट्ठी, विदूषक और पगलाराजा शीर्षक कहानी आर्थिक रूप से विपन्न, असहाय, लाचार एवं बेसहारा लोगो की कहानियाँ कहती है जबकि 'पुरानी हवेली' नामक कहानी में महिला सुधार गृह में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, उनके शारीरिक-मानसिक शोषण आदि को दिखाया गया है। 'दंगाई' कहानी साम्प्रदायिकता के स्थान पर सामाजिक सौहार्द स्थापित करने में सफल रहती है तो 'ज्ञानमार्गी' नामक कहानी शिक्षकों के नैतिकपतन और उसकी बढ़ती मूल्य हीनता को उजागर करती है। संग्रह की अंतिम कहानी 'रैन बसेरा' प्राकृतिक सौंदर्य के साथ साथ-साथ विलासिता व कामुकता आदि के चित्रण पर केन्द्रित है। ध्यातव्य है कि पिछले संग्रह की भाँति ही इस संग्रह की भी कहानियाँ भावपक्ष और कलापक्ष में यथेष्ट सामंजस्य स्थापित करने में सफल रही है।

4. अतिथि देवो भव- बिस्मिल्लाह जी का यह कहानी संग्रह सन् 1990 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसका नामकरण इसमे संकलित इसी नाम की एक कहानी के आधार पर किया गया है तथा इसमें भी कुल चौदह कहानियाँ संग्रहित है। इस संग्रह की कहानियों में आलिया धोबी और पावभर गोश्त, सिद्दकी साहब, पूँजी, अभिनेता, माल और मुनाफा, खाल खीचने वाले, पुण्यभोज, नर लीला, आधा फूल आधा शव, यह कोई अंत नही, सुलह, ग्राम सुधार, दुसरा सदमा, टिन्नू का टेलीफोन, तथा अतिथिदेवो भव शीर्षक कहानियाॅ संग्रहित है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण जीवन की विविध विषयी संगतियों-विसंगतियों, आवश्यकताओं अनुभूतियो एवं मनोवृत्तियों आदि के चित्रण से

अंतर्संबंधित हैं। ग्रामीण संस्कृति की सघनतम विद्यमानता इन कहानियों के भावगत सौंदर्य की अभिवृद्धि में विशेष सहायता करती हैं। भारतीय संस्कृति के सिद्धांत वाक्य 'अतिथि देवो भव' का सम्यक अनुरक्षण इसी शीर्षक कहानी में देखने को मिलता है, जिसमें कहानी के पात्र मनोहर पाण्डेय की पत्नी भारतीय संस्कृति की नैतिकता और व्यावहारिकता का संरक्षण करती दिखाई देती है। वह अपने यहाँ आगत अतिथि का देवतुल्य सत्कार करते हुए पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण बन रही शहरीय भारतीय संस्कृति को आईना दिखा देती है। आलिया धोबी और पावभर गोश्त कहानी मुस्लिम समाज में शेख व पठान बिरादरी की जातिगत श्रेष्ठता संबंधी अवधारणा का उद्‍घाटन किया गया है। इसी तरह यह कोई अंत नही शीर्षक कहानी शोषित मजदूरों के माध्यम से क्रांति का स्वर मुखरित करती है। मास्टर साहब की नेतृत्व में बीड़ी मजदूर एकत्रित होकर अपने शोषण और उत्पीड़न के प्रतिरोध में आन्दोलन करते हैं। खाल खीचने वाले कहानी के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने समाज के उस वर्ग की सामाजिक-आर्थिक जीवन संबंधी समस्याओं को उजागर क्रिया है जो कि अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए मृतक पशुओं की खाल निकालने तथा चमड़े के जूते-चप्पल बनाने जैसा कठोर लेकिन वीभत्स कार्य करता है। कहानी में 'भुनेसर' नामक पात्र इसी वर्ग को प्रतिनिधित्व प्रदान करता दिखाई देता है जिसके साथ समाज अमानवीयता का व्यवहार करता है। 'सिद्दकी साहब' नामक कहानी में जातिवाद का स्वर मुखरित हुआ है जहाँ सिद्दकी साहब को अपने सिद्दकी जाति से संबंधित होने का अभिमान है। वे प्रतिक्षण अपनी जातिगत श्रेष्ठता सिद्धि के नए-नए तरीकों का अनुसंधान करते रहते हैं। इसी तरह संग्रह की 'अभिनेता' नामक कहानी बहुपत्नी प्रथा, विवाह-विच्छेद आदि सामाजिक कुरीतियों के माध्यम से मनुष्य पर व्यंग्य के माध्यम से मनुष्य के नाटकीय जीवन तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था द्वारा स्त्रियों की शोषक मानसिकता पर कुठाराघात किया गया है। दूसरे संग्रहो की भाँति ही इस संग्रह की कहानियॉं भी बेजोड़ शिल्पकारिता की नमूना प्रस्तुत करती हैं जिनमें भाषा और शैली की उत्कृष्टता दर्शनीय रही है।

5. जीनिया के फूल- बिस्मिल्लाह जी का पाँचवा कहानी संग्रह 'जीनिया के फूल' नाम से सन् 1991 ई° में प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली से प्रकाशित हुआ जिसमे जर्दा, पेशेवर, इन्द्रधनुष, मनुष्य हत्या, सालभर का त्यौहार, आग, मरुस्थल, मादा सारस की कातर आँखे, एहसास, दीवार, उगलइयॉ, दो बूंदें, पटाक्षेप, जीनिया के फूल, पशु, इज्जतदार, कानून, तूफान से पहले, प्रथम प्रसव, दैत्य, अछूतोद्वार, बाजीगर, लड़के बाप, मिट्ठा, तराजू और दावत शीर्षक कुल सत्ताइस कहानियाँ संग्रहित है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियॉ प्रेम और रोमानियत के विभिन्न संदर्भों को उद्‌घाटित करती है। प्रेम को भावनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाली ये कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। नादान कहानी बाल सुलभ प्रेम की अभिव्यंजना करती है जिसमे कथानायक निशांत नामक लड़की से प्रेम करते हुए बाल चेष्टाओं का प्रदर्शन करता है लेकिन निशांत भी नायक से प्रेम करती है या नही इसका स्पष्टीकरण कहानी नहीं कर पाती है। कहानीकार ने नायक के एकपक्षीय प्रेम संबंधी भावानुभावों की व्यंजना को अधिक महत्व दिया है। इसी तरह 'मादा सारास की कातर आँखे' कहानी भी एकतरफा प्रेम में पड़े युवक के अंतर्मन की व्यथा-कथा को व्यक्त करती दिखाई देती है। प्रेम का इजहार करने से डरता हुआ कथानायक अपने प्रेम को सारस के प्रेम तथा स्वयं को सारस पक्षी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है। इसी तरह 'जीनिया के फूल' शीर्षक कहानी भी प्रेममार्ग में उत्पन्न अवरोधों के वर्णन की कहानी है जबकि इज्जतदार एवं प्रथम प्रसव नामक कहानियाँ जीवन की आर्थिक विसंगतियों-अभावग्रस्तताओ पर केन्द्रित रही है। इसी तरह इस संग्रह की अन्य कहानियाँ भी ज्यादातर प्रेम की पीर और धनाभाव की पीड़ा का आदि को विभिन्न स्वरूपों में चित्रित करती दिखाई देती है। इन कहानियों का शिल्पगत वैशिष्ट्य भी अन्य कहानियों के समान अपरूप किस्म का रहा है।

6. रफ-रफ मेल- बिस्मिल्लाह जी का यह कहानी संग्रह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से सन् 2000 ई° में प्रकाशित हुआ जिसमे चमगादड़, जीना तो पड़ेगा ही, लग्गी गोती बालक

स्वामी, गृह प्रवेश, रफ-रफ मेल, जीवन दुलहिन, कर्मयोग, नींद जब नही आती, पेड़, माता-मिरला की कहानी तथा लौट नामक 'कुल पंद्रह कहानियाँ संकलित है। इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में बिस्मिल्लाह जी ने ग्रामीण जीवन और संस्कृति की सुंगध को बिखेरा है। आँचलिक परिदृश्य में प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों तथा का कहावतों का प्रयोग इन कहानियों के कलापक्ष के सौंदर्य में वृद्धि कर देता है। चमगादड़ कहानी वृद्ध माता-पिता के प्रति पुत्र की स्वार्थी वृत्ति को दर्शाती है। जबकि रफ-रफ मेल कहानी एक मध्यमवर्गीय वर्गीय मुस्लिम बस चालक बद्दू मास्टर की जीवन-स्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। इसी तरह से इस संग्रह की अन्य कहानियाॅ भी ग्रामीण जीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, आवश्यकताओं, अनुभूतियों आदि का यथार्थांकन करती दिखाई देती है। ये कहानियाँ एक अलग ही तेवर रखती है जिनमे उत्तर आधुनिक भारतीय समाज का मिजाज स्पष्टत: परिलक्षित होता है। संवाद शैली में लिखित ये कहानियाँ प्रगतिशील होने के साथ-साथ प्रयोगधर्मी भी है जिनमें लोकभाषा और लोक संस्कृति की समस्त प्रवृत्तियों को संरक्षित रखने का सफल प्रयत्न किया गया है। व्यंग्यात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता की विशेषताओं की पोषक-संरक्षक चमगादड़ और रफ-रफ मेल जैसी कुछेक कहानियों में शिल्प के स्तर पर एक नयी तरह की सृजनशीलता देखने को मिलती है।

7. अब्दुल बिस्मिल्लाह की विशिष्ट कहानियाॅ- उपर्युक्त छः कहानी-संग्रहों में संकलित कुछ विशिष्ट कहानियों को बिस्मिल्लाह जी ने राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से सन् 1985 ई॰ में प्रकाशित करवाया और संग्रह का नाम अब्दुल बिस्मिल्लाह की विशिष्ट कहानियाँ रखा। इस संग्रह में कोई नयी कहानी नहीं संग्रहित है बल्कि इनका चयन पूर्व प्रकाशित कहानी संग्रहो से ही किया गया है। इसी तरह रैनबसेरा, कितने कितने सवाल, टूटा हुआ पंख और जीनिया के फूल।

8. अजगर का पेट- नामक चारों संवर्गों की समग्र कहानियों को 'ताकि सनद रहे' शीर्षक से सन् 2014 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ने प्रकाशित किया। अब्दुल बिस्मिल्लाह की बाल कहानियों का यह संग्रह ईशान प्रकाशन नोएडा से सन् 1989 ई० में प्रकाशित हुआ। अजगर का पेट, अपनी कमजोरी, मन का ताप, चिड़ियाँ और सोने की अंगूठी नामक पाँच व बालोपयोगी कहानियों के इस संग्रह की कहानियाँ बाल-अंतर्मन की जिज्ञासाओं, अनुभूतियों तथा कल्पनाओं आदि को अभिव्यंजित करती है।

9. शादी का जोकर- कालक्रम की दृष्टि से यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का सर्वाधिक नूतन कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 2013 ई० में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ। इसमे खून, किस्साफकीर मुहम्मद फकीर का, त्राहिमाम, फीडबैक, कुछ आपबीती कुछ सपना और कुछ कल्पना, कैलेंडर, शादी का जोकर, महामारी, फिर क्या हुआ, उनकी बीमारी, इन्दिराज, रक्षादूत, तीसरी औरत, नाम-रूप, तूफानी पहलवान, नदी किनारे शाम, तथा कोसे का साफा, दुधारी छूरी और एक डिक्शनरी नामक कुल सत्रह कहानियाँ संग्रहित है। इन कहानियों के माध्यम से कहानीकार ने आम जनमानस की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं, कशमकश, मानसिक विचलन आदि को कथात्मक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है। 'खून' नामक कहानी जहाँ रिश्तों की रक्षा करने वाले तथा स्वार्थी दुनिया की दास्तान बयाँ करती है वही त्राहिमाम, कैलेंडर, महामारी, तीसरी औरत आदि कहानियाँ जीवन की सामाजिकता-असामाजिकता से संदर्भित है । इसी तरह से शादी का जोकर और तूफानी पहलवान शीर्षक कहानियों में भी व्यंग्यात्मक अंदाज में कलाकारो की एवं कला रसिको की हास्यास्पद स्थिति का चित्रण किया गया है। दरअसल रसास्वादन के साथ-साथ समकालीन परिवेश में व्याप्त जीवनगत संख्यातीत विसंगतियों, दुश्चिंताओ, असमंजस आदि की अभिव्यक्ति इस संग्रह की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। अन्य कहानी संग्रहों की भांति ही बिस्मिल्लाह जी के इस संग्रह मे भी भावपक्ष और कलापक्ष का बेजोड़ समन्वय रहा है।

ब. उपन्यास

1. समय शेष है- प्रकाशन की दृष्टि से यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का प्रथम उपन्यास है जो राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से सन् 1984 ई° में प्रकाशित हुआ। आत्मकथात्मक प्रकृति का यह उपन्यास अपने पुस्तकालय संस्करण में प्रथमत: वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था जिसका अंतर्वेदन कालांतर में राजकमल प्रकाशन के अंतर्गत हुआ। इस उपन्यास में बिस्मिल्लाह जी ने अपने ही जीवन को औपन्यासिक ताने-बाने में बुना है। उपन्यास का नायक सात-आठ वर्ष की उम्र में मातृहीन हो जाता है और अंत तक जीवन जीने के लिए संघर्ष करता रहता है। बिस्मिल्लाह जी के आरंभिक जीवन में जो सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और शैक्षणिक विसंगतियॉ व्याप्त रही थी उन्हीं की वर्तमानता कथानायक के बाल्यकाल में भी दृष्टिगोचर होती है। इसी तरह माता की मृत्यु के बाद बिस्मिल्लाह जी को ननिहाल का परित्याग करके अपने पैतृक गाँव बलापुर आकर बसना पड़ा था और गरीबी, भूखमरी से संघर्ष के लिए पिता के कार्यों में सहयोग करना पड़ा था इन्ही सब परिस्थितियों से उपन्यास की नायक को भी बाल्यकाल में सामना पड़ा है। अनाथ हो जाने के बाद जैसे उपन्यासकार को भोजन, आवास एवं शिक्षा आदि मूलभूत आवश्यकताओं के लिए रिश्तेदारों अथवा सगे-संबंधियो के शोषण का शिकार होना पड़ा था वैसे ही कथानायक को भी। दरअसल इस उपन्यास का कथानायक कोई और नही बल्कि बिस्मिल्लाह जी ही है जो आरम्भिक जीवन में अपने भोगे हुए यथार्थ की आत्मकथात्मक शैली में अभिव्यक्ति प्रदान करते है। इसलिए लेखको के लिए जो कार्य उनकी आत्मकथाएँ करती है वही कार्य बिस्मिल्लाह जी के लिए बहुत हद तक उनका यह उपन्यास करता है।

2. झीनी-झीनी बीनी चदरिया- प्रकाशन क्रम की दृष्टि से यह बिस्मिल्लाह जी का दूसरा लेकिन प्रसिद्धि की व्यापकता की दृष्टि से पहला उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1986 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ। इस उपन्यास का भावपक्षीय तथा कलापक्षीय

ताना-बाना जिस विशिष्टता के साथ बुना गया है उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसने अकेले अपने बल बिस्मिल्लाह जी की समकालीन साहित्य को सर्वाधिक ख्यातिलब्ध कथाकार की पदवी दिला दी। दरअसल बिस्मिल्लाह जी के कथाकार व्यक्तित्व की आयामिक विस्तीर्णता में इस उपन्यास का केन्द्रीय अवदान रहा है। उपन्यास का शीर्षक 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' भक्तिकालीन संत कवि कबीर के एतद्विषयक प्रसिद्ध टेक से लिया गया है। भाव एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से यह बिस्मिल्लाह जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमे बनारस के मुसलमान बुनकरों की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक महा दयनीयता को अत्यंत ही संवेदनात्मक स्वरूप अभिव्यक्त किया गया है। अध्यापन के लिए अपने बनारस प्रवास के दौरान बिस्मिल्लाह जी अपना अधिकांश समय बुनकर समाज के मध्य ही व्यतीत किए थे। यहॉ रहते हुए इन्होंने बुनकरों के दुःख-दर्द उनके अनुभव, उनकी आवश्यकताएँ, पीड़ा, गरीबी आदि को देखा ही नहीं बल्कि अनुभूत भी किया था। यह अनूभूति सहानुभूति वाली न होकर स्वानभूति वाली थी जिसे इस उपन्यास में औपन्यासिक स्वरुप प्रदान किया गया है। भारत भारद्वाज के शब्दों में- "यह उपन्यास बनारस के साड़ी बुनकरों के अटूट संघर्ष का दस्तावेज है।" बिस्मिल्लाह जी ने इस उपन्यास को 'ताना' और 'बाना' शीर्षक दो खण्डो में विभक्त किया है। दोनों खण्डों के बीच में लेखकीय मंतव्य को स्पष्ट करने वाला क्षेपक भी है। इसमें प्रथम खण्ड 'ताना' कथानायक मतीन की संघर्ष गाथा और उसकी पराजय के दर्द व्यक्त करता है तो दूसरा खण्ड 'बाना' मुस्लिम समाज में व्याप्त दहेज, विवाह-विच्छेद, बहुपत्नी प्रथा आदि कुरीतियों-कुप्रथाओं को अभिव्यंजित करता है। इसमे तलाक की प्रथा को मुस्लिम समाज में प्रकीर्णित एक कोढ़ के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिससे मुस्लिम समाज की बहुसंख्यक स्त्रियों की जिंदगी नर्क बन जाती है। इसके अतिरिक्ति उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम समाज के धार्मिक कार्यक्रमों तथा इनसे उपजे साम्प्रदायिक तनावो और इन तनावो का बुनकर समाज पर पड़ने वाले प्रभावों आदि का भी यथार्थपरक चित्रण देखा जा सकता है। इस उपन्यास के ताने-बाने को भली भाँति समझने

के लिए भारत भारद्वाज का अग्रलिखित कथन से बड़ी सहायता मिलती है "दास कबीर की जतन से ओढकर रख ही गयी चदरिया अध्यात्म और रहस्य के ताने-बाने से बुनी गयी थी लेकिन अब्दुल बिस्मिल्लाह के इस 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' को बनारस के गरीब साड़ी बुनकर जुलाहों ने अपने श्रम के सौंदर्य से बुना है।"

3. जहरबाद- यह लेखन-क्रम की दृष्टि से पहला और प्रकाशन समय की दृष्टि से बिस्मिल्लाह जी का तीसरा उपन्यास है। बिस्मिल्लाह जी ने इस उपन्यास की रचना 'समर शेष है' उपन्यास से पहले ही कर दी थी लेकिन किसी कारणवश इसका प्रकाशन सन् 1984 ई° में ही हो सका। राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित यह उपन्यास भी 'समर शेष है' कि भाँति आत्मकथात्मक प्रकृति का है। अर्थात् इसमें भी बिस्मिल्लाह जी अपने ही आरम्भिक-जीवन की व्यावहारिक विसंगतियों को औपन्यासिक ताने-बाने में बुना है। इस तरह से यदि कालक्रम की दृष्टि से विचार किया जाय तो 'समर शेष है' उपन्यास 'जहरबाद' की कड़ी में ही लिखा गया प्रतीत होता है। इसकी अभिपुष्टि विवेच्य उपन्यास के कथानकीय देशकाल और वातावरण से भी हो जाती है। बिस्मिल्लाह जी बाल्यकाल का प्रथम सोपान अपने ननिहाल मध्यप्रदेश के मण्डला जिले के हिनौता गाँव में तथा उत्तरवर्ती सोपान इलाहाबाद में स्थित पैतृक गाँव बलापुर में व्यतीत हुआ था। इसी अनुक्रम में ज़हरबाद उपन्यास के अंतर्गत हिनौता गांव में सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक परवेश को कथानक का स्वरूप प्रदान किया गया है जबकि 'समर शेष है' उपन्यास की कथाभूमि बलापुर की प्राकृतिक परिस्थितियों-प्रवृत्तियों और जीवन स्थितियो से अंतर्सबंधित है। इससे सिद्ध होता है कि 'जहरबाद' उपन्यास की रचना 'समर शेष है' से पूर्व की गयी है। दरअसल इस उपन्यास में भी बिस्मिल्लाह जी ने अपने बालक स्वरूप को ही कथानायक के रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी आरम्भिक जीवन-स्थितियों की दुर्दातताओं के चित्रण द्वारा बिस्मिल्लाह जी ने समकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विसंगतियों को भी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के कटघरे मे खड़ा किया है। राजनीकि-प्रशासनिक नीतियों की

असफलता अथवा उनमे व्याप्त विद्रूपताओं के कारण मध्यम और निम्न वर्ग का जीवन अभावग्रस्त और अकिंचन बन जाता है। यही अभावग्रस्तता अथवा दरिद्रता बिस्मिल्लाह जी जैसे साधारण लोगो की जिंदगी को जहरीली बना देती है। यह 'जहरबाद' कम होने के बजाय निरंतर फैलता जा रहा है। समकालीन जनवादी कवि त्रिलोचन के अनुसार- "उपन्यास की यह विशेषता है कि मध्यप्रदेश के किसी लेखक ने अब तक इस अँचल को नहीं छुआ है। इस उपन्यास में ऐसे चरित्रों का निरुपण हुआ है जो गरीबी की रेखा के बहुत नीचे पाए जाते है। दरअसल यह उपन्यास ग्रामीण परिवेश में जीवन के अस्तित्व के लिए संघर्षरत अर्द्ध सर्वहारा लोगो की कहानी है।"

आत्मकथात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास में आत्मवृत्व स्वरूप बिस्मिल्लाह जी ने मण्डला के हिनौता गाँव में व्यतीत किए अपने बाल्यकाल के अभावग्रस्त जीवन, वन-विभाग में पिता की नौकरी, नौकरी से त्यागपत्र, माता-पिता के बीच होने वाली लड़ाई और मारपीट, परिवार की आर्थिक परिस्थितियों में आई दुर्दांतता, रोटी, कपड़ा एवं मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की अनुपस्थिति हिनौता ग्रामवासियों की दयनीय स्थिति, वहाँ की भुखमरी, गरीबी, अमानवीयता, अकाल, विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ, प्राकृतिक आपदाओं तथा सामाजिक विषमताओं आदि का संवेदनात्सक चित्रण किया है। वस्तुत: जहरबाद उपन्यास को बिस्मिल्लाह जी का आरम्भिक अथवा प्रथम जीवन-वृत्त कहा जा सकता है जिसमे इन्होंने अपने ही बचपन के दुख-दर्द, संत्रास, गरीबी, भुखमरी आदि का महाकाव्यात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। कथानक, देशकाल और वातावरण पात्र, चरित्र-चित्रण, संवाद अथवा कथोपकथन, भाषा-शैली एवं उद्देश्य आदि औपन्यासिक कला तत्वों की दृष्टि से बिजोड़ यह उपन्यास बिस्मिल्लाह जी का प्रथम और आत्मकथात्मक प्रकृति का होते हुए भी विशिष्ट साहित्यिक महत्ता का बन गया है।

4. दंतकथा- दंतकथा शीर्षक यह उपन्यास प्रकाशन क्रम की दृष्टि से बिस्मिल्लाह जी का चौथा और औपन्यासिक सफलता की दृष्टि से 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के बाद दूसरा सामाजिक उपन्यास है। सन् 1990 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित होने से पूर्व यह धारावाहिक रूप से 'इंडिया टुडे' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। व्यंग्यात्मक शैली में लिखा यह उपन्यास अपने लाक्षणिक अर्थ में एक मूंर्गे की आत्मकथा है। इस अर्थ में इस उपन्यास की समस्त भावपक्षीय तथा कलापक्षीय संरचना अभिधार्थ से नितांत भिन्न स्वरूपों वाली है। प्रकृति में लघु यह उपन्यास पक्षी के रूप में एक मूर्गे की आत्मकथा होने से हिन्दी साहित्येतिहास की आत्मवृत्त परंपरा में नितांत नवीन एवं विलक्षण किस्म का है। उपन्यास का कथानक मनुष्य की आत्मकथा पर केन्द्रित है या मुर्गे की यह जिज्ञासा उपन्यास में आद्यंत बनी रहती है। दंतकथा उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ऐसे युग की मनोदशा को कहानी का आवरण पहनाया है जो मनुष्य की हत्या की नीयत से डरा हुआ तथा सशंकित अपनी प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर भागता फिरता रहता है। वीरेन्द्र मोहन के शब्दों में- "दंतकथा उपन्यास को आज के हत्यारे और दहशतज़दा समय में जीवन की चाहत और उसके लिए संघर्ष-प्रयास का उपन्यास भी कह सकते हैं।"

मनुष्य के संघर्ष की भांति ही इस उपन्यास का कथानायक मुर्गा भी अपनी भयग्रस्त और आतंकग्रस्त मानसिक अवस्था में जिंदगी से संघर्ष करता दिखाई देता है। इस संघर्ष के चित्रण द्वारा उपन्यासकार मनुष्य को शोषण का मँझा हुआ खिलाड़ी सिद्ध करके संसार मे व्याप्त भय असुरक्षा आतंक आदि से प्रादुर्भुत जीवनगत संघर्षो एवं विसंगतियों के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराता है। कल्पता शैली में सृजित यह उपन्यास नगरीय सभ्यता को भी सवालों के घेरे में खड़ा करता है तथा पशुता को मनुष्यता से कही अधिक महान सिद्ध करता है। ग्रामीण और नगरीय संस्कृति के मध्य सुस्थित मूलभूत विभेदों को दर्शाते हुए लेखक ने मनुष्य की उपयोगितावादी शक्ति और स्वार्थी वृत्ति वैज्ञानिकता, धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिकता और सामाजिक सौहार्द आदि पर भी दृष्टिपात किया है। उपन्यासकार के ही

शब्दों में- "मनुष्यों का यह समाज, जो अपने सभ्य, बुद्धिमान विकासशील और न जाने क्या-क्या कहता है मेरे देखने में आया कि असल में यह शुद्ध रूप में उपयोगितावादी लाभवादी और स्वार्थी है।" मुर्गे की संघर्षशील जिंदगी के संवेदनात्मक चित्रण के माध्यम से बिस्मिल्लाह जी ने उपन्यास में हिंदुओं और मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता वाली भावना पर भी व्यंग्य किया है। इसी तरह यह उपन्यास अपनी भाषा और शैली में ग्रामीण तथा नगरीय संस्कृति के चित्रांकन में भी सफल रहा है। उपन्यास का शिल्पपक्ष एक नितांत नवीन प्रयोग प्रतीत होता है जो कि औपन्यासिक कलेवर को विकसित करने वाली भाषा और भाव के द्वारा निर्मित हुआ है।

5. मुखड़ा क्या देखे- सन् 1996 ई° में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित यह बिस्मिल्लाह जी का पाँचवा उपन्यास है जो कि कथात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास का नामवाची शीर्षक कबीर की सैद्धांतिकी से संदर्भित है जिसमें एक मुस्लिम चुड़िहार परिवार की व्यथा-कथा कही गयी है जो कि आपसी वैर, प्रतिरोध, साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरता आदि कारणो से अपना गाँव छोड़कर मध्यप्रदेश में चला जाता है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की भारत की सामाजिक, साम्प्रदायिक और धर्मिक परिस्थितियों का संवेदनात्मक चित्रण करने वाले इस उपन्यास में हिन्दू एवं मुस्लिम प्रथा द्वारा किए जाने वाले मुस्लिम चुड़िहार परिवार के शोषण और उत्पीड़न को व्यक्त किया गया है।

भगवानदास मोरवाल के शब्दों में- "मुखड़ा क्या देखें समग्र भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों के अलावा मुस्लिम रीति-रिवाजों के साथ-साथ हिंदू और ईसाई रीति-रिवाजो का भी चित्रण करता है।" प्रधानतःमुस्लिम चूड़िहार अली अहमद और उसके परिवार के शोषण, दमन एवं उत्पीड़न की मर्मगाथा के उदघाटन के उद्देश्य से विरचित इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता, कट्टरता आदि के साथ-साथ जमीदारी प्रथा, असहिष्णुता, आपसी वैमनस्यता, सामाजिक भेदभाव, गरीबों-दलितों के शोषण, तथा इनकी

भुखमरी, गरीबी व दरिद्रता धार्मिक कर्मकाण्ड व सांस्कृतिक विविधता, अकाल, दुर्भिक्ष महामारी तथा पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध आदि को भी कथानक की परिधि में पर्याप्त जगह प्राप्त हुई है। दरअसल "मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास किसी विशेष गाँव या विशेष पात्रों की कथा न होकर सामान्य भारतीय जनमानस की कथा है। इस उपन्यास को बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक समाज की दृष्टि से भी न ही देखा जा सकता है। भारतवर्ष बहुजातीय, बहुधार्मिक और बहुभाषायी देश है। हिन्दी में ऐसे अनेक उपन्यास आए हैं जो या तो बहुसंख्यक समाज की कहानी कहते है या फिर अल्पसंख्यक समाज की, लेकिन 'मुखड़ा क्या देखे' समग्र भारतीय समाज की कहानी कहता है जिसमें संपन्न वर्ग के हिन्दू और मुसलमान दोनो मिलकर हिन्दू 'परजा' और मुसलमान 'परजा' का शोषण करते है।" अनेक कथात्मक एवं विवरणात्मक शैली में सृजित इस उपन्यास के संवाद छोटे और सरल प्रकृति है तथा इसमें चित्रित देशकाल समकालीन इलाहाबाद का ग्रामीण परिवेश है। इसी परिवेश की भाषाई प्रवृत्तियों, यहाँ प्रचलित लोकगीतो, मुहावरों और लोकोक्तियों आदि के प्रयोग से उपन्यास के कलापक्ष के सौंदर्य में व्यापक अभिवृद्धि हो जाती है।

6. रावी लिखता है- सन् 2010 ई° में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित यह उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह का इक्कीसवीं सदी में परिस्थितियों प्रवृत्तियों और जन-चित्तवृत्तियों के अनुरूप लिखा गया पहला उपन्यास है जो कि पुस्तकाकार प्रकाशन से पूर्व 'बया' (दिसम्बर-2002) में छप चुका था। विवेच्य उपन्यास का कथानक विकास एवं आधुनिकता की अवधारणा से अपरिचित ग्रामीण जीवन से आरम्भ होकर दिल्ली, इलाहाबाद आदि महानगरी से होता हुआ योरप के महानगरीय जीवन-स्थितियों तक प्रकीर्णित है। यद्यपि इस उपन्यास में आंचलिक जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति की निवर्तमानता मन को कचोटती है लेकिन अपने परिधीय विस्तार में कथानक एक बड़े समयांतराल को समेटने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है। आधुनिकता, वैज्ञानिकता और नुतनता का लबादा ओढ़े

अस्त-व्यस्त महानगरीय जीवन तथा सभ्यता और संस्कृति के पोषक-संरक्षक मिजाज वाले शहरों का अपना कोई मौसम नहीं होता है। जबकि गाँव की अपनी संस्कृति व सभ्यता के अतिरिक्त मौसम भी अपना होता है। मौसम के परिवर्तन का प्रत्यक्षदर्शी भी गाँव ही होता है। इस उपन्यास में गाँव और शहर का आपसी द्वंद्व साफ-साफ दृष्टिगोचर होता है। कुएँ का सूखना, जहाँ गाँव के समूह की प्रवृत्ति को दर्शाता है वही नल का टपकना, शहरों के एकांकीपन की संस्कृति का बोधक है। गाँव और शहर की इसी विडंबना का द्वंद्व पूर्व और पश्चिम की संस्कृति तथा जीवन-स्थिति का भी द्वंद्व है। इस उपन्यास में वली मुहम्मद त्रेता युग के प्रतिनिधि के रूप में आकांक्षाओ-महत्वाकाक्षाओं के बीच के द्वंद्व, वली मुहम्मद के पुत्र और बड़ी अप्पी के पिता डैडी द्वापरयुग के प्रतिनिधि के रूप में समय एवं स्वप्निल आशाओ के द्वंद्व कथावाचक बड़ी अप्पी और उसकी पीढ़ी कलियुग के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्तिगत स्वार्थ तथा मनुष्यता के द्वंद्व और दीन मुहम्मद सतयुग के रूप में सहज जीवन के द्वंद्व के प्रतीक है और यही चारों सम्मिलित रूप से एक निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार का वृत्तांत निर्मित करते हैं। इसी तरह इस उपन्यास में हिन्दू एवं मुस्लिम समाज में व्याप्त संगतियों-विसंगतियों का भी यथार्थपरक अंकन देखने को मिलता है। कथानायक रावी में अप्पी के माध्यम से पूर्व और पश्चित तथा गाँव और शहर का द्वंद्व तथा सतयुग-त्रेतायुग एवं द्वापरयुग का मिथक प्रादुर्भूत होता है। इस ताने-बाने में देश और विदेश दोनों सन्निहित है। अप्पी अपनी जड़ों की तलाश मे फैंटेसी का शिल्प निर्मित करती है। इस उपन्यास में स्थान एवं समय की विविधता के साथ-साथ भाषिक और शैलीगत वैविध्य भी देखने को मिलता है जिनका प्रयोग स्वच्छंदता की सीमा तक किया गया है। उपन्यास में भिखारी-फकीर, देश-देस, कुॅंआ-नल आदि सामान्य तथा व्यावहारिक शब्दों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थभेदो के प्रति उपन्यासकार विशेष रूप से सचेष्ट रहा है एवं इन्ही के माध्यम से वह परम्परा और आधुनिकता के चार पीढ़ी के द्वंद्व को उपन्यास में उद्घाटित करने में सफल रहा है। इस तरह से कह सकते है कि यह उपन्यास "पाश्चात्य और भारतीय सभ्यता-संस्कारों के बीच पुल

बनाता एक संवेदनशील तथा शालीन मुस्लिम परिवार का मार्मिक दस्तावेज है। लेखक ने वर्तमान के माध्यम से अतीत के कथांचित का सजीव चित्रण किया है और साहित्य की एक सशक्त प्रविधि फैंटेसी का बखूबी प्रयोग करते हुए उपन्यास को एक नए सौन्दर्य शास्त्र से सृजित किया है। उपन्यास में एक निम्नमध्यम वर्गीय लेकिन कर्मशील मुस्लिम परिवार की कई पीढ़ियों की जीवनगाथा का रोचक ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। उनकी संस्कृति व सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ यह उपन्यास ग्रामीण जीवन की गहनता प्रकृति प्रेम खेत-खलिहानों के दृश्यों का भी सफर करता है।

भारतीयता की जड़े कितनी सशक्त गहरी और शाश्वत है और उनका प्रभाव कितना दूरगामी है यह उपन्यास इस सच्चाई को स्थापित करता है। पाश्चात्य संस्कृति में पले बच्चे जिन्हे देशी रहन-सहन, खान-पान, भाषा और अपने दुर्व्यवस्था से अजीब सा परहेज था उनका सहज रूपांतरण एक खूबसूरत प्रक्रिया है।" इस तरह से यद्यपि यह उपन्यास झीनी-झीनी बीनी चदरिया के विश्वस्त देश की आयामिता का अतिक्रमण करने में भले ही सफल न रहा हो लेकिन इसका निजी वैशिष्ट्य चार पीढ़ियों के अंतराल तथा वैश्वीकृत मुस्लिम समाज की जीवनगत यथार्थता का कहानीपन है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

7. अपवित्र आख्यान- मुस्लिम समाज के बाहरी और भीतरी अंतर्विरोधों की मार्मिक कथा और संवेदनात्मक कथा कहने वाला यह उपन्यास सन् 2012 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में वर्तमान अर्थ केन्द्रित समाज तथा उनके समक्ष खड़े मुस्लिम समाज के आंतरिक तथा बाह्य अवरोधो की कथा के माध्यम से समकालीन भारत की वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रवृत्तियों और मनस्थितियों आदि का यथार्थांकन किया गया है। उपन्यास का शीर्षक अपवित्र आख्यान स्वयं इस अर्थवत्ता का पोषक है कि समाज में पवित्रता एवं अपवित्रता दोनों विद्यमान होती है। इन्ही दोनों घटकों के आधार पर समाज में विभाजन की नीव पड़ती है जिसके बाद संघर्ष एवं

अंतर्द्वन्द्व की स्थिति प्रादुर्भूत होती है। हिन्दू समाज की दृष्टि में जहाँ मुसलमान, अपवित्र तथा मलेच्छ है वही मुस्लिम समाज हिंदुओं को काफ़िर मानता है। उपन्यास का कथानक इस बात की सिद्धि के प्रति अधिक आग्रही रहा है कि धर्म, जाति, लिंग, भाषा आदि घटको ने मनुष्य की अस्मिता को धूमिल कर दिया है। हम हिंदू-मुसलमान, ब्राह्मण-दलित, पुरुष-स्त्री, भारतीय-पाकिस्तानी तथा हिंदी भाषी-उर्दू भाषी तो होते हैं लेकिन इंसान नहीं हो पाते हैं। बिस्मिल्लाह जी ने आधुनिक जीवन के इन्ही अंतर्द्वंदों को अत्यंत ही यथार्थता और कलात्मकता के साथ अक्षरबद्ध किया है। दरअसल- "यह उपन्यास हिन्दू-मुस्लिम रिश्ते की मिठास और खटास के साथ समय की तिक्तताओं और विरोधाभासों का भी सूक्ष्म चित्रण करता है। उपन्यास के नायक का संबंध ऐसी संस्कृति से है जहाँ संस्कार और भाषा के बीच धर्म कोई दीवार खड़ा नहीं करता। लेकिन शहर का सभ्य समाज उसे बार-बार यह अहसास दिलाता है कि वह मुसलमान है। और इसलिए उसे हिन्दी और संस्कृति की जगह उर्दू या फारसी की पढ़ाई करनी चाहिए थी। वहीं ऐसे पात्रों से भी, उसका सामना होता है, जो अन्दर से कुछ और हो बाहर से कुछ और होते हैं। उपन्यास की नायिका यूँ तो व्यवहार में नज़ाम रोजे वाली है लेकिन नौकरी के लिए किसी मुस्लिम नेता से हम बिस्तरी करने में उसे कोई हिचक भी नहीं होती।" कथानक की भाँति ही पात्र और चरित्र-चित्रण, देशकाल एवं वातावरण, संवाद, अथवा कथोपकथन, भाषा-शैली एवं उद्देश्य आदि औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से भी बिस्मिल्लाह जी का यह उपन्यास अप्रतिम और इक्कीसवीं सदी की संवेदनात्मक भावभूमियों में सृजित हुआ प्रतीत होता है।

8. कुठाँव- अब्दुल बिस्मिल्लाह द्वारा अभी तक लिखे गए उपन्यासों की श्रृंखला का यह अंतिम उपन्यास सन् 2019 ई° में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के सिद्धांत वाक्य 'मारेसि मोहिं कुठाँव' से शीर्षक प्राप्त करने वाला यह उपन्यास मुस्लिम समाज की सामाजिक विद्रूपताओं का जीवंत दस्तावेज बन गया है। इसमें मुस्लिम समाज में विद्यमान जातिवाद जैसी विभाजक कुरीति को कुठाँव

अर्थात् मर्मस्थल के मानिंद माना गया है। यह एक ऐसा संवेदनशील विषय की चीड़-फाड़ करता है जिसके अस्तित्व को ही अस्वीकार कर दिया जाता है तथा जिसके संदर्भ में बात करना सम्पूर्ण मुस्लिम समाज के लिए एक पीड़ादायक विषय बन गया है। यह उपन्यास वास्तव में भारतीय मुस्लिम समाज के संगठनात्मक अथवा एकात्मक स्वरूप की अवधारणा पर प्रहार करते हुए समाज में वर्तमान जातिप्रथा एवं अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों का सघन विवेचन-विश्लेषण करता है। कुॅंठाव शब्द का अभिधार्थ ही मर्मस्थल होता है जिसे उपन्यासकार ने शरीर का वह संवेदनशील भाग है जिस पर तीव्र प्रहार करने से मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। यह उपन्यास अस्पृश्यता एवं जातिवाद को अस्वीकृत करते हुए समानता की अवधारणा पर बल देता है। इसी तरह उपन्यास में लेखक ने अब ऐसे सभी तर्कों-अवधारणाओं आदि का चित्रण व उल्लेख किया है जो मुस्लिम समाज में जातिवाद की वर्तमानता को अस्वीकृति प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त "कुॅंठाव में स्त्री और पुरुष का प्रेम और वासना का हिन्दू और मुसलमान का और ऊँची-नीची जातियों का एक भीषण परिदृश्य रचा गया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह समाज और विशेष रूप से मुस्लिम समाज की आंतरिक विडम्बनाओ और विसंगतियो को बखूबी चित्रित कर रहे हैं। इस उपन्यास में मेहतर समाज की मुसलमान औरत इद्दन और उसकी बेटी सितारा है जो ऊॅंची जाति के पैसे वाले मुस्लिम मर्दो से लोहा लेती हैं। स्त्री और पुरुष के और भी आमने-सामने के कई समीकरण यहाँ रचे गए है और यौन को एक हथियार की तरह इस्तेमाल करके अपनी सामाजिक और मर्दाना प्रतिष्ठा को द्विगुणित करने के कुप्रयासों का भी निर्दयतापूर्वक भंडाफोड़ किया गया है।" बिस्मिल्लाह जी का यह अंतिम उपन्यास भावपक्ष की भाँति ही कलापक्ष में भी अपरूप किस्म का है। इसमे उपन्यास कला के सभी तत्व आधुनिकता, तार्किकता एवं सर्वोत्तमता के साथ वर्तमान है। उपन्यास की भाषा सहृदयों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती है क्योकि नितांत नई हिन्दी की भाषा है।

स. नाटक

बिस्मिल्लाह जी ने कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं के साथ-साथ ही नाट्य विधा में भी सिद्धहस्त रचनाकार रहे हैं। इनकी विलक्षण नाटकीय रचनाधर्मिता से प्रादुर्भूत विकसित नाट्य कृतियाॅं भी दूसरी विधागत रचनाओं जितनी ही साहित्यिक महत्ता और उपादेयता रखती है। इन्होने अभी तक दो पैसे की जन्नत, कागज का घोड़ा, कलियुग का रथ और जनता खुद देखेगी नामक चार नाटको की रचना की है। ये सभी नाटक सन् 1997 ई° में अभिरुचि प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित 'दो पैसे की जन्नत' शीर्षक नाट्य संग्रह में संकलित है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि से संदर्भित इन नाटको का स्वतंत्र परिचय अग्रलिखित प्रकार से है-

1. दो पैसे की जन्नत- यह बिस्मिल्लाह जी का सर्वाधिक ख्यातिलब्ध नाटक है। इसका प्रथम मंचन आठ अक्टूबर 1986 ई° को सुरेश स्वप्निल के निर्देशन में जनरंग भोपाल के रवीन्द्र भवन में हुआ था और तब से लेकर आज तक 12 से अधिक बार विभिन्न मंचो से इसका मंचन किया जा चुका है। इतिहास और वर्तमान की परिस्थितियों के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसमें वर्तमान समय में हो रहे किसानों, मजदूरों के शोषण और उस शोषण के प्रतिरोध मे उठने वाले क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त किया गया है तथा साथ ही इसमें तानाशाही शासन की क्रूरता एवं उसकी शोषण विधियों को भी चित्रित किया गया है। दरअसल सत्ता की मनमानी एवं शासन की स्वेच्छाचारिता तथा इस तानाशाही का प्रतिरोध ही इन नाटक का मूल प्रतिपाद्य है।

2. कागज का घोड़ा- इस नाटक में भारत की प्रशासनिक और नौकरशाही व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, लालफीता शाही एवं तानाशाही जैसे कुप्रवृत्तियों को नाटकीय अमली जामा पहनाकर उनका पर्दाफाश किया गया है। नाटक के नायक को प्रशासनिक अधिकारी, बैंक मैनेजर, डॉक्टर, प्रिंसिपल व टीचर आदि सभी नौकरशाह परेशान करते हैं।

3. कलियुग का रथ- अपने कथ्य एवं नाट्य शिल्प की दृष्टि से सर्वाधिक चर्चित रहे बिस्मिल्लाह जी के इस नाटक में पूँजीपति वर्ग का सर्वहारा वर्ग पर किया जाने वाला अत्याचार चित्रित है। इसमें दिल्ली शहर की प्रशासनिक, दुर्व्यवस्था का थी चित्रण है, जिसमें पुलिस विभाग के द्वारा साधारण, जनमानस में की जा रही लूटपाट और प्रताड़ना के कारण व्याप्त डर को केन्द्र में रखा गया है। पुलिस व्यवस्था जन सेवा के लिए होती है लेकिन यही जनसेवक जब गरीबो के प्रति शोषण और प्रताड़ना का वीभत्स रूप अपना लेते है तब आम जनमानस की जो स्थिति एवं मनोवृत्ति बनती है उसी को नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। तथा साथ में यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि इन परिस्थितियों के निर्माण एवं विसंगतियों के प्रसार की एकमात्र कारण अशिक्षा है। यदि गरीब व अथवा सर्वहारा वर्ग शिक्षित हो जाएगा तो वह न केवल अपने अधिकारों को जान पाएगा अपितु उन्हें प्राप्त करने के लिए क्रांति का आह्वान भी कर सकेगा।

4. जनता खुद देखेगी- बिस्मिल्लाह जी का यह चौथा और अंतिम नाटक कृषक जीवन में व्याप्त विसंगतियों की पृष्ठभूमि पर विरचित है जिसमें बुद्ध किसान तथा ठाकुर भरत सिंह के अनमेल संबंधों का चित्रण किया गया है। बुद्ध भोलाभाला किसान है और ठाकुर भरत सिंह धूर्तता से उसे ठगता है, प्रत्युत्तर में बुद्ध प्रत्येक तरह की क्रांति करने के लिए पर अमादा हो जाता है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि गरीबो और मजदूरों के शोषण की भी एक सीमा होती है। इस सीमा का अतिक्रमण ही समाज में क्रांति का कारण बनता है।

द. आलोचना

1. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक- यह आलोचनात्मक पुस्तक वस्तुतः बिस्मिल्लाह जी का शोध-प्रबंध है जिसके आधार पर ही इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा

डी० फिल० की उपाधि प्रदान की गयी है। इसका पुस्तकाकार प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद से सन् 1985 ई° में हुआ।

2.अल्पविराम- यह समालोचनात्मक कृति बिस्मिल्लाह जी के आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है जिसे सरोज प्रकाशन दिल्ली ने 1984 ई° में प्रकाशित किया। इसमें संकलित प्रमुख लेखो में प्रेमचंद की संघर्ष चेतना, प्रेमचंद जी की रचना दृष्टि, प्रेमचंद की कहानियों और तत्कालीन राष्ट्रीय परिवेश, जिजिविषा की कहानियाँ, भाषा के राजगीर (हरिशंकर परसाई), साहित्य में इतिहास का सृजन, बकरी का नाट्य सौदर्य समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य, जनवादी कहानी: दशा और दिशा, राष्ट्रीय एकता का स्वरूप और रचनाधर्मिता, हिन्दी के विकास में व्यवधानकारी तत्त्व तथा धार्मिक रूढ़िवाद और लेखक-आदि शीर्षक लेख शामिल है।

3. विमर्श के आयाम- यह भी बिस्मिल्लाह जी के आलोचनात्मक लेखो का संकलन है, जिसका प्रकाशन सन् 2006 ई° में अनंग प्रकाशन दिल्ली से हुआ। दो खण्डों में विभक्त इस संकलन के प्रथम खण्ड में- बाजारवाद के दबाव में साहित्य और साहित्यकार उपन्यास होता क्या है, कहानी से पहले की कहानी, भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास, हिन्दी कहानी: स्वरूप और विकास, सामंती मूल्यों के विरुद्ध शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ, काव्य-कला पर निराला, कबीर का पेशा और कबीर की कविता, द्विवेदी जी के कबीर और कबीर के द्विवेदी जी तथा साहित्य में नगर आदि एवं दूसरे खण्ड में- हिंदी में अनुवाद की परम्परा, हिन्दी में अनुदित उर्दू उपन्यास, उर्दू-फारसी में लिखित राम कथा, हिन्दी में अनूदित उपन्यासों की भाषा, मंटो की औरतें, मिर्जादादी रूसवा और उमराव जान अदा तथा मीर अम्मन और बागो-बहार आदि लेख संग्रहित है।

4. संपादन कार्य एवं अनुवाद-कर्म- 1. माया- मित्र प्रकाशन लिमिटेड से प्रकाशित माया पत्रिका को सह-संपादक के पद को संशोधित कर चुके है।

2. कदम - वाराणसी से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका के संपादक होने के साथ-साथ वे इसके संस्थापक भी रहे हैं। कामरेड उत्तम चंद इसके सह-संस्थापक भी थे।

3. दस्तंबू- 1857 की डायरी- अब्दुल बिस्मिल्लाह एक सफल अनुवादक भी हैं। इसी अनुक्रम में इन्होंने अनेक साहित्यिक-असाहित्यिक कृतियों का अनुवाद किया है। मिर्जा असद-उल्लाह खां गालिब उर्दू के ख्यातिलब्ध कवि और शायर रहें हैं जिन्होंने भारत के प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन के समय 11 मई 1857 ई° से लेकर 31 जुलाई 1857 ई° तक की राजनीतिक प्रशासनिक हलचलो को फारसी भाषा मे दस्तंबू शीर्षक छोटी सी पुस्तिका में कवित्वमयी ढंग से प्रस्तुत किया है। बिस्मिल्लाह जी ने डायरी की प्रकृति में लिखित इसी पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद यह कृति है। फारसी में दस्तंब का अर्थ पुष्पगुच्छा होता है। जैसे जिस भाव और मन से मिर्जा गालिबो ने अपने इस पुष्पगुच्छ को निर्मित किया था उसी भाव और मन का भाषांतरण बिस्मिल्लाह जी की इस अनूदित कृति में देखा जा सकता है। इस अनुवाद-कार्य के अतिरिक्त बिस्मिल्लाह जी ने विभिन्न भाषाओं में लिखी कुछ और रचनाओं का भी अनुवाद किया है जिनका परिचयात्मक विवरण अग्रलिखित है-

क. उर्दू से हिन्दी में अनूदित-

1- प्रतिनिधि कविताएँ और उनकी एक व्यंग्य कृति इब्न इंशा पाकिस्तानी

2- उर्दू की आखिरी किताब- इब्न ईशा

3- यहूदी की लड़की- आगा हस्र कश्मीरी

4- सारे सुखन हमारे- फैज अहमद फैज

5- बागो बहार- मीर अरमान

6- अड़गिनामा- प्रो० मुनीस राझा

7- यादगारे गालिब- मौलाना अल्ताफ हुसैन अली

अ. अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित-

1- लघु कहानियाँ- पथ-प्रदर्शक - सारिका प्रकाशन

2- हमीद सचीद कविताएँ-अरबी कवि- इंद्रप्रस्थ भारती और आदर्श शिला से प्रकाशित

3- बच्चों के लिए दक्षिण भारतीय कहानियाँ- चमकीले दाँतो की कहानी- बाल मेला प्रकाशित

4- मैंगोलियन लघु कहानियाँ- मेरा बेटा अवश्य आएगा- अपूर्वा कहानियों से प्रकाशित

1.2.3 पुरस्कार और सम्मान- बहुमुखी प्रतिभा एवं विलक्षण रचनाधर्मिता के पोषक-संरक्षक जनवादी साहित्यकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी अनेक कालजयी कृतियों के अवदान द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में जो अप्रतिम योगदान दिया है उसके ऋण से मुक्त होने के लिए हिन्दी साहित्य संसार भी निरंतर प्रयासरत रहा है। इसी अनुक्रम में अनेक संस्थाओं ने समय-समय पर इसकी सर्जनाओं एवं इनके व्यक्तित्व पर पुरस्कृत तथा सम्मानित किया है जिनका परिचयात्मक विवरण अधोलिखित है-

1. सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार- बिस्मिल्लाह जी के ख्यातिलब्ध 'झीनी- झीनी बीनी चदरिया' को सन् 1984 ई° में सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार से नवाजा गया।

2. उत्तर-प्रदेश, हिन्दी संस्थान पुरस्कार- क. सन् 1997 ई° में अब्दुल बिमिल्लाह के कविता संग्रह- 'मुझे बोलने दो' को उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार प्राप्त हुआ।

ख. इनके कहानी संग्रह- 'रैन बसेरा' को उत्तर-प्रदेश हिंदी संस्थान के यशपाल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

3. हिन्दी अकादमी पुरस्कार- बिस्मिल्लाह जी के कविता संग्रह- 'वलीमुहम्मद और करीमनबी की कविताएँ' को हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

4. मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् पुस्कार- बिस्मिल्लाह जी के उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' को मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा दिया जाने वाला वीर सिहं देव पुरस्कार प्रदान किया गया है।

5- मध्यप्रदेश का केड़िया पुरस्कार- इनके उपन्यास 'झीनी- झीनी बीनी चदरिया' को सन् 1987 ई° में केड़िया पुरस्कार प्रदान किया गया है।

इन पुरस्कारों के अतिरिक्त बिस्मिल्लाह जी को अपनी साहित्यिक यात्रा के विभिन्न सोपानों-अवसरों पर भिन्न-भिन्न संस्थाओं, मंचो, व्यक्तियों, संगठनों आदि के द्वारा सम्मानित होने का सुअवसर प्राप्त होता रहा है। यद्यपि बिस्मिल्लाह जी के समुद्रीय प्रकृति के साहित्यिक अवदान के दृष्टिगत ये पुरस्कार और सम्मान न तो कोई महत्त्व रखते है और न ही ऐसा करके साहित्य संसार उनके ऋण से पूर्णतःउऋण ही हो सकेगा लेकिन ऐसा करने से साहित्य-सृजन के प्रति उनका उत्साह स्थिर अवश्य रहा है जिसका परिणाम बहुसंख्यात्मक एवं बहुपरिमाणात्मक सर्जनाओं का अस्तित्ववान होना है।

अब तक किए गए उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण अथवा अध्ययन-अनुशीलन के उपरांत सारांशिक स्वरूप में कहा जा सकता है कि असाधारण व्यक्तित्व एवं बहुआयामी व्यक्तित्व तथा बुद्धि वैभवशील बिस्मिल्लाह जी की सर्जनाओ में उनकी ही जीवनगत परिस्थितियाॅं, प्रवृत्तियाॅं एवं उनके देशकाल की जनचित्तवृत्तियाँ अपनी समग्र संवेदनात्मकता, हृदय द्रवणता, यथार्थता तथा दुर्दांतता के साथ चित्रित हुई है। कर्मठी, संवेदनशील, भावुक, दयार्द्र, आस्थावान, स्वाभिमानी तथा शोषितो, पीड़ितो एवं वंचितों के प्रति आस्थावान व्यक्तित्व वाले बिस्मिल्लाह जी बाल्यकाल में ही यतीम होने के बाद दुत्कार और जिल्लत भरी जिंदगी जीने को विवश हुए। संघर्ष की इस भयानकता का जिस साहस के साथ इन्होंने सामना किया था

उसी साहस और संघर्ष की महागाथा है- उनका सृजन-कार्य, आकर्षक व्यक्तित्व एवं आत्मीय स्वभाव वाले बिस्मिल्लाह जी की साहित्यिक उत्तमता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 'झीनी-झीनी बीनी चदरियाँ' उपन्यास तथा अन्य अनेक विधागत रचनाओं का अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है तथा आज भी हो रहा है जो कि इनके व्यक्तित्व की बहुआयामिता के साथ-साथ इनकी सृजनशीलता की समृद्धि का भी बोधक है।

समकालीन अथवा जनवादी साहित्यकारो में अपना विशिष्ट अभिधान रखने वाले बिस्मिल्लाह जी कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं संबंधी किसी व्यवस्थित साहित्यिक वाद या सिद्धांत से सर्वथा असंपृक्त ऐसे सर्जक है जिनकी सर्जनाएँ व्यक्ति और व्यक्ति तथा व्यक्ति एवं समाज के भावानुभावों, अनुभूतियों व मनोवृत्तियों आदि से संपृक्त है या फिर इसका उद्घाटन करने वाली है। हिन्दी की जनवादी परम्परा में बहुत कम ही रचनाकार हुए हैं जिनकी रचनाओ में कथानक के साथ-साथ कथाकार का परिवेश भी बोलता हुआ दिखाई दे। इनकी कहानियों और उपन्यासो में ग्रामीण परिवेश वाली मिट्टी की सोंधी गंध के अतिरिक्त सामान्य जीवन की स्थितियों, घटनाओं सांस्कृतिक विविधताओं आदि की भी सुगंध प्रकीर्णित रही है। इनका साहित्यिक देशाटन दीर्घकालिक होने के कारण इनके पास लेखन का का भी लम्बा अनुभव है। इसी तरह इनके पास हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अपनी सुदृढ़ परम्परा वर्तमान रही है। जीवन व जगत का विस्तृत अनुभव रखने वाले बिस्मिल्लाह जी का रचना-संसार इसके अनुभवों से भी बड़ा है। इनके कथा-साहित्य की चादर गरीबी, भुखमरी, अभावग्रस्तता, शोषण, उत्पीड़न, अस्वीकार, प्रतिरोध, संघर्ष, जिजीविषा आदि के धागे से बुनी गयी है। इस बनावट में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता के लोक रंग और बोली संबंधी चमकदार व आकर्षक नक्कासी भी है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की बीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों से लेकर वर्तमान सदी के आरम्भिक दो दशको तक की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों,

प्रवृत्तियों तथा मनोवृत्तियों को चित्रलिखित कर देने वाली इनकी रचनाएँ जीवन से प्रत्यक्षतः अंतर्संबंधित होने के कारण इन्हें समकालीन अन्य सर्जकों से अलग कर देती है और इसी आधार पर ये प्रेमचंद, रेणु एवं अमरकांत की परम्परा से सम्बद्ध हो जाते हैं। सामाजिक यथार्थताओं के शब्दांकन के समय जिस तरह से ये सतह के नीचे की वास्तविकताओं को भी खीचकर निकाल लेते हैं उस तरह से परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं का उद्घाटन समकालीन कथा-साहित्य में विरले ही दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ-सूची

1- चितामणि भाग-दो, काव्य में रहस्यवाद, संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ संख्या- 98

2- अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा-साहित्य, डॉ॰ वासीम मकानी, पृष्ठ संख्या-18

3- वही, पृ॰ संख्या- 20

4- वही, पृ॰ संख्या- 21

5- वही, पृ॰ संख्या- 22

6- वही, पृ॰ संख्या- 27

7- वही, पृ॰ संख्या- 25,26

8- वही, पृ॰ संख्या- 32

9- किसके हाथ गुलेल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृष्ठ संख्या- 25

10- वही, पृ॰ संख्या- 22

11- समीक्षा, त्रैमासिक, अक्टूबर-दिसम्बर-1987, संपादक- गोपाल राय पृष्ठ संख्या- 9

12- समकालीन कथा-साहित्य का एक रूप संपादक- चन्द्रदेव यादव पृष्ठ संख्या- 50, 96

13- दस्तावेज, मासिक, जनवरी-1998, संपा०- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृष्ठ संख्या- 104

14- दंतकथा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृष्ठ संख्या- 19

15- समाज कल्याण, मासिक, फरवरी-1997 पृष्ठ संख्या- 31

16- मुखडा क्या देखें, अब्दुल बिस्मिल्लाह, आवरण पृष्ठ से उद्धत

17- रावी लिखता है अब्दुल बिस्मिल्लाह, आवरण पृष्ठ से उद्धत

18- अपवित्र-आख्यान, अब्दुल बिस्मिल्लाह, कवर पृष्ठ से उद्धत

19- कुठाँव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, कवर पृष्ठ से उद्धत